मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 143 ● वर्ष 15, अंक 7 ● अक्टूबर 2025 ● दस रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

जनान्दोलनों से भयाक्रान्त फ़ासिस्ट भारतीय राज्यसत्ता 11

दुर्गावती वोहरा : भारत की क्रान्तिकारी विरासत में चमकता हुआ एक नाम 7

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त 12

एसआईआर के फ़र्जीवाड़े से लाखों प्रवासी मज़दूरों, मेहनतकशों, स्त्रियों, अल्पसंख्यकों के मताधिकार के हनन के बीच बिहार विधानसभा चुनाव

जनता के सामने क्या है विकल्प?

केन्द्रीय चुनाव आयोग (केचुआ) ने घोषणा की है कि 6 से 11 नवम्बर के बीच बिहार में विधानसभा चुनाव आयोजित कराये जायेंगे। लेकिन इन चुनावों पर जून महीने से ही भाजपा की गोद में बैठे केचुआ द्वारा आयोजित कराये गये स्पेशल इण्टेंसिव रिवीज़न (एसआईआर) की काली छाया मँडरा रही है। एसआईआर के ज़रिये भाजपा सरकार ने बिहार की जनता के उन हिस्सों के मताधिकार को छीनने की साज़िश की है, जो हिस्से ग़रीब दलित, स्त्रियों, अल्पसंख्यकों और प्रवासी मज़दूरों के बीच से आते हैं। ग़ौरतलब है कि ये ही वे समुदाय व वर्ग हैं जिनके बीच से भाजपा को वोट मिलने की सम्भावना कम है और विपक्षी गठबन्धन को वोट मिलने की सम्भावना ज़्यादा है। भाजपा सरकार ने देश के पैमाने पर इसी प्रकार का एसआईआर कराने का इरादा अपने पिट्ठू केचुआ के ज़रिये ज़ाहिर कर दिया है। हम मेहतनकश और मज़दूर जानते हैं कि पूँजीवादी व्यवस्था में चुनावों के ज़रिये ही किसी बुनियादी बदलाव की उम्मीद नहीं की जा सकती है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि मताधिकार छीन लिये जाने का हमारे लिए कोई

सम्पादकीय अग्रलेख

अर्थ नहीं है। यह हमारा राजनीतिक जनवादी अधिकार है और इसके इस्तेमाल के ज़रिये भी मेहनतकश आबादी अपने स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष को खड़ा करने की जद्दोजहद करती है, जनविरोधी सरकारों व उनकी नीतियों के विरुद्ध अपनी सामूहिक इच्छा को अभिव्यक्त करती है, विविध तात्कालिक सुधारों के लिए दबाव बनाती है, व पूँजीपति वर्ग की मैनेजिंग कमेटी द्वारा नीति-निर्माण की प्रक्रिया में आंशिक दख़ल रखती है।

एसआईआर: मेहनतकश जनता के मताधिकार को छीनने और चोर दरवाज़े से एनआरसी की साज़िश को लागू करने की फ़ासीवादी चाल

भाजपा की मोदी-शाह नीत फ़ासीवादी सरकार आज इस राजनीतिक जनवादी अधिकार को ही मूलत: रद्द कर देने की फ़िराक़ में है। जनता के बीच मोदी सरकार की बढ़ती अलोकप्रियता के मद्देनज़र संघ परिवार और भाजपा सरकार उन सामाजिक वर्गों व समुदायों के मताधिकार को रद्द करने का प्रयास कर रही है जो उसके विरुद्ध जाने की प्रबल सम्भावना रखते हैं। जनता के मताधिकार को पहले भी भाजपा सरकार ईवीएम घोटाले और अन्य प्रकार के चुनावी फ्रॉड के ज़रिये रद्द करने के कुकर्मों में लिप्त रही है। आज यह बात भारत का हर जागरूक नागरिक जानता है। एसआईआर आयोजित करवाने की ताज़ा मुहिम भी इसी साज़िश का एक हिस्सा है। इसलिए यह समझना हमारे लिए ज़रूरी है कि एसआईआर में क्या घपला किया जा रहा है।

यह सही है कि समय-समय पर

(पेज 9 पर जारी)

आरएसएस के 100 साल - संघ की सच्चाई और देश के मेहनतकशों से ग़द्दारी की दास्तान

● अजित

इस साल आरएसएस (राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ) के 100 वर्ष पूरे हो चुके हैं। हर तरफ़ संघ के बड़े-बड़े कार्यक्रम हो रहे हैं। बड़े स्तर पर "पथ संचलन" से लेकर कई गतिविधियों को अंजाम दिया जा रहा है। गोदी मीडिया इसे भारत के लिए "गर्व" का विषय बताते नहीं थक रहा है। लाल किले की प्राचीर से फ़ासीवादी सरकार के प्रमुख मोदी ने भी संघ के तारीफ़ में क़सीदे पढ़े तथा आरएसएस के 100 साल के इतिहास को भारत के इतिहास का "स्वर्णिम पृष्ठ" क़रार दिया। लाल किले से संघ के "सेवा", "समर्पण", "संगठन" तथा "अनुशासन" का उल्लेख किया गया। राष्ट्र निर्माण में संघ के योगदान तथा संघ का आज़ादी के आन्दोलन में भूमिका को मोदी ने अन्य कई कार्यक्रमों में रेखांकित किया। संघ भी ख़ुद को "राष्ट्रवादी", "देशभक्त", तथा "संस्कृति रक्षक" बताता रहा है। आज देश में कोई भी व्यक्ति भाजपा व संघ परिवार के हिन्दुत्व की राजनीति का विरोध करता है तो उसे देशद्रोही क़रार दे दिया जाता है। संघ की नज़र में जो भी व्यक्ति छात्रों, मज़दूरों, दलितों, आदिवासियों व अल्पसंख्यकों के अधिकारों की बात करता है वह देशद्रोही है। **हर किसी को देशद्रोही क़रार देने और देशभक्ति का सर्टिफ़िकेट बाँटने वाले संघ की असलियत और 100 वर्षों के इसके इतिहास को देखें तो इनका असली चाल-चेहरा-चरित्र हमारे सामने आ जाता है।**

आजादी की लड़ाई और आरएसएस का क्या सम्बन्ध है? **कुछ नहीं!** आइए देखते हैं। 1925 में विजयदशमी के दिन संघ की स्थापना होती है। अपनी स्थापना से लेकर 1947 तक संघ ने अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ किसी लड़ाई में कोई हिस्सा नहीं लिया। इतना ही नहीं अंग्रेज़ों को कई माफ़ीनामे भी लिखे और अंग्रेज़ी हुकूमत के प्रति वफ़ादार रहते हुए किसी भी आन्दोलन में शामिल नहीं होने का वादा तक किया। इसके साथ ही जो नौजवान आज़ादी की लड़ाई में शामिल होना चाहते थे उन्हें शामिल होने से भी रोका। इस बात की पुष्टि के लिए हम कुछ उदाहरण देख सकते हैं।

1. गोलवलकर ने लिखा था: "नित्य कर्म में सदैव संलग्न रहने के विचार की आवश्यकता का एक और भी कारण है। समय-समय पर देश में उत्पन्न परिस्थितियों के कारण मन में बहुत उथल-पुथल होती ही रहती है। सन् 1942 में भी ऐसी उथल-पुथल हुई थी। उसके पहले सन् 1930-31 में भी आन्दोलन हुआ था। उस समय कई लोग डॉक्टर जी (हेडगेवार) के

(पेज 8 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

क्रान्तिकारी दुर्गावती वोहरा

(पेज 7 से आगे)

और यह स्थापित करती हैं कि किसी भी सामाजिक परिवर्तन की लड़ाई में स्त्रियों की भागीदारी अनिवार्यत: होनी चाहिए।

दुर्गा भाभी जिस संगठन से जुड़ी थीं उसका नाम था- 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन'। राष्ट्रीय आन्दोलन में क्रान्तिकारियों की जो धारा थी, 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' उसी धारा से जुड़ा था, जोकि 1924 में शचिन्द्रनाथ सान्याल के नेतृत्व में बना था। इस संगठन से रामप्रसाद बिस्मिल, अशफ़ाकउल्ला खान, चन्द्रशेखर आज़ाद, भगवती चरण वोहरा, रोशन सिंह, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी आदि और बाद में भगतसिंह भी जुड़ते हैं। यही संगठन 1928 में भगतसिंह के नेतृत्व में तब्दील होकर 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन' बनता है। यह संगठन इस आधार पर गठित होता है कि क्रान्तिकारी जिस तरह का समाज बनाना चाहते थे, उनका मक़सद संगठन के नाम में झलकना चाहिए। एचएसआरए के क्रान्तिकारी स्पष्ट करते हैं कि आज़ादी का मतलब केवल अंग्रेज़ों को भगाना नहीं है, बल्कि एक ऐसे समाज के निर्माण की लड़ाई है जिसमें एक व्यक्ति के द्वारा दूसरे व्यक्ति का और एक देश के द्वारा दूसरे देश का लूटा जाना असम्भव हो जाये; जहाँ पर उत्पादन, राजकाज और पूरे सामाजिक ढाँचे पर मज़दूर और मेहनतकश वर्ग का नियन्त्रण हो। दूसरी बात जो एचएसआरए की विरासत में प्रतिबिम्बित होती थी, वह थी सच्ची धर्मनिरपेक्षता, जिसके अनुसार धर्म और राज्य को कभी मिलाया नहीं जाना चाहिए। उस समय अंग्रेज़ों की 'फूट डालो राज करो' की नीति के ख़िलाफ़ क्रान्तिकारी लगातार संघर्ष कर रहे थे।

27 फ़रवरी 1931 को चन्द्रशेखर आज़ाद इलाहाबाद में अंग्रेज़ों से लड़ते हुए शहीद हो गये। इसके कुछ ही दिनों बाद, 23 मार्च, 1931 को भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु ने फाँसी का फन्दा चूम लिया। इनके अलावा बहुत सारे क्रान्तिकारियों को आजीवन कारावास और काले पानी की सज़ा सुनायी गयी थी और ब्रिटिश हुकूमत की पूरी ताक़त क्रान्तिकारी धारा को ख़त्म करने में झोंक दी गयी। इस दबाव और एक सही वैचारिकी से लैस नेतृत्व के अभाव में क्रान्तिकारी धारा बिखर गयी।

भगवतीचरण वोहरा 1930 में ही एक बम परीक्षण के दौरान शहीद हो गये थे। वे अपने साथियों के साथ मिलकर भगतसिंह और अन्य क्रान्तिकारियों को जेल से छुड़ाने की योजना पर काम कर रहे थे। लेकिन पति की शहादत के बाद भी दुर्गा भाभी क्रान्तिकारी कामों में बढ़-चढ़कर भागीदारी करती रहीं, हालाँकि 1931 के बाद से क्रान्तिकारी धारा के बिखरने के साथ ही दुर्गा भाभी के जीवन पर भी इसका प्रभाव पड़ा।

आज हम जिस फ़ासीवादी दौर में जी रहे हैं, हालत यह है कि बेरोज़गारी, महँगाई, महँगी शिक्षा, मुसलमानों के खिलाफ़ दमन, स्त्री-उत्पीड़न, दलित-उत्पीड़न की घटनाएँ लगातार बढ़ रही हैं। एनसीआरबी 2025 के आँकड़े के अनुसार, 2023 में एक साल के भीतर 1,32,000 नौजवानों ने आत्महत्या की है। महँगाई ने आम मेहनतकश जनता की कमर तोड़ दी है। दलितों, अल्पसंख्यकों और महिलाओं के ख़िलाफ़ अपराध के आँकड़े लगातार बढ़ रहे हैं। ऐसे समय में दुर्गावती वोहरा जैसे क्रान्तिकारियों की विरासत को जानना और अधिक प्रासंगिक और ज़रूरी हो जाता है ताकि हम उनके विचारों और आदर्शों से प्रेरणा लेकर उनके सपनों के समाज के निर्माण के लिए आगे आयें।

मज़दूर बिगुल डाक से न पहुँचने की शिकायतों के बारे में

हमें 'मज़दूर बिगुल' के कई नियमित पाठकों की ओर से अक्सर ऐसी शिकायतें मिल रही हैं कि अख़बार की प्रति उन्हें मिल ही नहीं रही है या अनियमित मिल रही है। ऐसे साथियों से आग्रह है कि वे एक बार अपने निकटतम डाकघर में लिखित शिकायत दर्ज करायें और उसकी प्रति हमें भी ईमेल या व्हाट्सएप पर भेज दें, ताकि हम जिस डाकघर से अख़बार पोस्ट करते हैं, वहाँ भी शिकायत दर्ज करा सकें।

पिछले काफ़ी समय के अनुभव और डाक विभाग के ही अनेक कर्मचारियों व अधिकारियों से बात करने के आधार पर यह स्पष्ट है कि यह सरकार जानबूझकर डाक विभाग की जनसेवाओं को नष्ट कर रही है ताकि इसके भी बड़े हिस्से को निजीकरण की ओर धकेला जा सके। एक तरफ़ सेवाओं के दाम बढ़ाये जा रहे हैं, दूसरी ओर नयी भर्तियाँ नहीं करने, ठेकाकरण बढ़ाने और डाकिये सहित तमाम कर्मचारियों पर काम का बोझ बढ़ाते जाने से भी सेवाएँ प्रभावित हो रही हैं।

'बिगुल' जैसे जनपक्षधर पत्र-पत्रिकाओं और हमारे पाठकों के लिए इससे कठिनाइयाँ बढ़ गयी हैं लेकिन हम पूरी कोशिश कर रहे हैं कि आप तक अख़बार पहुँचता रहे। इसमें हमें आपका भी सहयोग चाहिए।

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमश: उपलब्ध कराये जा रहे हैं।
मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर नि:शुल्क पढ़ा जा सकता है।
आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितयों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं। नम्बर है : 8853476339

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ-226016
फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क : बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
मूल्य : एक प्रति – 10/- रुपये
वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित)
आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

फ़ासिस्ट भाजपा और संघ के साम्प्रदायिक एजेण्डा और अम्बेडकर अस्पताल की आपराधिक लापरवाही के कारण नौजवान की मौत

● अदिति

बीते 3 अक्टूबर को पाँच मन्दिर, शाहाबाद डेरी (दिल्ली) में लोग दशहरा के बाद मूर्ति विसर्जन के लिए गये थे। इस दौरान एक हादसा हुआ और लोगों से भरा ट्रक पलट गया। इसमें अनमोल नाम के युवक का पैर कट गया और उसे इलाक़े के सबसे पास स्थित अम्बेडकर अस्पताल में ले जाया गया। वहाँ समय से इलाज नहीं मिलने से उसकी मौत हो गयी।

अम्बेडकर अस्पताल में लाने के बाद लगभग 3 घण्टे तक अनमोल का इलाज नहीं किया गया और उसे मरने के लिए छोड़ दिया गया। अनमोल को समय से आईसीयू में भर्ती करने के बजाय, अस्पताल के कुछ भ्रष्ट डॉक्टर परिजनों से रिश्वत माँगने और पुलिस को बुलाकर लोगों को धमकाने में व्यस्त थे। अगर समय से अम्बेडकर अस्पताल के डॉक्टरों ने इलाज शुरू कर दिया होता, तो आज अनमोल हमारे बीच होता। साफ़ है कि अम्बेडकर अस्पताल के भ्रष्ट प्रशासन की लापरवाहियों के कारण हमने अनमोल को खोया है। साथ ही हादसे में दर्जनों लोग घायल भी हुए थे। घायलों में चार लोगों की स्थिति काफ़ी नाज़ुक है। इनमें एक आकाश है, जिसके हाथ, पैर और रीढ़ की हड्डी में गम्भीर चोटें आयी हैं, आकाश के हाथ को काटकर अलग कर दिया गया है। दूसरी हैं कमला देवी, जिनके हाथ का बहुत ज़्यादा मांस फट गया है। अर्जुन, आठवीं कक्षा में पढ़ता है, जिसके कूल्हे की हड्डी टूट गयी है। साथ ही बुचनी एक घरेलू कामगार हैं, जिनका पूरा जबड़ा टूट गया है, जो अभी भी बोलने में असमर्थ है। अम्बेडकर अस्पताल में ठीक से इलाज नहीं होने के कारण घायल लोग दिल्ली के अलग-अलग अस्पताल में चक्कर काट रहे हैं।

अम्बेडकर अस्पताल के प्रशासन की लापरवाही कोई नयी नहीं है। यहाँ लापरवाही के कारण पहले भी ऐसी घटनाएँ घट चुकी हैं। अम्बेडकर अस्पताल प्रशासन द्वारा की गयी लापरवाहियों पर नज़र डालते हैं:

• जून 2025, बाबा भीमराव अम्बेडकर अस्पताल में एक नवजात शिशु की मौत।

• जूनियर रेजिडेण्ट और सीनियर रेजिडेण्ट डॉक्टरों द्वारा कई अलग इंजेक्शनों को मिलाकर नर्सों में लगाया गया, जिससे गम्भीर जटिलताएँ उत्पन्न हुई।

• एक मरीज़ को अस्पताल में कथित रूप से लापरवाही भरे इलाज के कारण अपना हाथ गँवाना पड़ा था, जिसके बाद दिल्ली हाई कोर्ट ने चिकित्सा लापरवाही के कारण मरीज़ को हुई क्षति के लिए अस्पताल को ₹23 लाख का मुआवज़ा देने के आदेश दिया।

• नवजात की मौत में लापरवाही का आरोप (2006)

• डॉक्टर के दुर्व्यवहार और लापरवाही का आरोप (2024): एक महिला ने अपनी बेटी की मृत्यु के सम्बन्ध में अम्बेडकर अस्पताल और एक डॉक्टर के ख़िलाफ़ शिकायत दर्ज करायी थी, जिसमें दुर्व्यवहार और लापरवाही का आरोप लगाया गया था। जाँच समिति की रिपोर्ट में डॉक्टर के दुर्व्यवहार और कर्तव्य में लापरवाही की बात सामने आयी थी।

• 2014 में, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (NHRC) ने अस्पताल पर एक गर्भवती महिला को भर्ती करने से मना करने के लिए जुर्माना लगाया था। महिला ने अस्पताल के बाहर ही बच्चे को जन्म दिया था। आयोग ने इसे चिकित्सा लापरवाही और मानवाधिकारों का उल्लंघन बताया।

मौजूदा घटना घटित ही इसलिए हुई क्योंकि यह पूरा कार्यक्रम धर्म के ज़रिये इलाके में साम्प्रदायिकीकरण की आग भड़काने के मक़सद से भाजपा सरकार व संघ परिवार ने आयोजित करवाया था। इस घटना के बाद अम्बेडकर अस्पताल के भ्रष्ट प्रशासन के रवैये ने रही-सही कसर पूरी कर दी। अम्बेडकर अस्पताल के भ्रष्ट प्रशासन की लापरवाहियों के कारण हमने अनमोल को खोया है। अस्पताल पहुँचने के 3 घण्टे तक इलाज नहीं करना, डॉक्टरों द्वारा रिश्वत की माँग करना, इसी कारण अनमोल की जान गयी है। इसी के साथ इलाक़े में भी स्थानीय प्रशासन और अस्पताल के दलाल मामले को ठण्डा करने की कोशिश में लगे हुए हैं। पूरे मामले को रफ़ा-दफ़ा करने के लिए अस्पताल प्रशासन, पुलिस प्रशासन और संघियों ने एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया है। लेकिन लोगों के दम पर और भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) के कार्यकर्ताओं द्वारा अनमोल का पोस्टमार्टम निष्पक्ष तरीक़े से करवाने के लिए प्रशासन पर दबाव बनाया गया ताकि अनमोल की मौत का असल कारण सामने आ सके। नतीजतन, अनमोल का पोस्टमार्टम डॉक्टर्स के विशेष बोर्ड द्वारा किया गया। अनमोल की मौत कोई दुर्घटना से हुई मौत नहीं है, बल्कि इस मज़दूर-विरोधी पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा की गयी निर्मम हत्या है। मज़दूरों के बच्चे का पैर कट जाने के बावजूद उसे 3 घण्टे तक इलाज न मिलना, इस व्यवस्था की नंगी तस्वीर दिखाता है।

हमें ऐसी घटनाओं की जड़ तक जाकर ये भी समझना होगा कि ऐसी घटनाओं के पीछे का मुख्य कारण क्या है! आख़िर ऐसी स्थिति क्यों बनी, जिसमें इतने लोग घायल हुए? किस कारण अनमोल का पैर कटा? जो ट्रक पलटा था, उसमें लोगों को भेड़-बकरियों की तरह ठूँसा गया था। त्योहारों के माहौल को साम्प्रदायिक रंग देने के मक़सद से अलग-अलग मज़दूर बस्तियों में संघ द्वारा कई कार्यक्रम-रैलियाँ आयोजित किये गये थे। त्योहारों पर ऐसे कई कार्यक्रम भाजपा-आरएसएस, विश्व हिन्दू परिषद, बजरंग दल या इनके ही लग्गू-भग्गुओं द्वारा आयोजित करवाये जाते हैं। ये सभी कार्यक्रम भाजपा की तथाकथित "हिन्दू हितैषी सरकार" के दम पर आयोजित होते हैं। इनमें "हिन्दू राष्ट्र" बनाने के नारे दिये जाते हैं। "हम हिन्दू हैं" जैसे गीत बजाये जाते हैं और लोगों की आस्था का फ़ायदा उठाकर उन्हें इन कार्यक्रमों में शामिल किया जाता है। लेकिन क्या ऐसे हादसों से इन सारे ढकोसलों की पोलपट्टी नहीं खुल जाती? क्या मरने वाला युवक "हिन्दू" नहीं था? **फिर क्यों एक "हिन्दू" युवक को अम्बेडकर अस्पताल में तड़प- तड़पकर कर मरने के लिए छोड़ दिया गया? कहाँ थे "हिन्दू रक्षा" के ढकोसले करने वाले भाजपा-आरएसएस, विश्व हिन्दू परिषद और बजरंग दल के लोग?** क्यों घटना होने के बाद ये लोग कहीं आस-पास भी नज़र नहीं आये? क्यों कोई "हिन्दू हितैषी" नेता वहाँ दिखाई तक नहीं दिया?

क्योंकि सवाल "हिन्दू" होने या न होने का है ही नहीं। इस घटना से यह बात स्पष्ट है। "हिन्दू हितैषी" होने का दावा करने वाली फ़ासीवादी भाजपा सरकार में एक "हिन्दू" बच्चा इलाज के बिना तड़प-तड़पकर अपना दम तोड़ देता है लेकिन ये सरकार उसको इलाज तक मुहैया नहीं कराती! कोई विधायक या सांसद इलाक़े में झाँकने तक नहीं आते हैं! साफ़ है कि आरएसएस और भाजपा हिन्दू धर्म का हवाला देकर सिर्फ़ और सिर्फ़ हमारा फ़ायदा उठाना चाहते हैं, धर्म के नाम पर हमें बाँटना चाहती है और आम मेहनतकश आबादी के युवाओं को अपनी साम्प्रदायिक फ़ासीवादी राजनीति का एक मोहरा बनाना चाहती है। हमारे इलाक़े में आरएसएस अपने साम्प्रदायिक ऐजेण्डे को पूरा करने के लिए ऐसे कार्यक्रम आयोजित करवाता रहता है, हमें "धर्म" और "राष्ट्र" की पट्टी पढ़ाता है। लेकिन साम्प्रदायिक फ़ासीवादी "राष्ट्र" ग़रीब मेहनतकशों की जगह क्या है, वह तमाम घटनाओं से रोज़-ब-रोज़ ज़ाहिर होता ही रहता है और इस घटना से भी ज़ाहिर हो गया।

तमाम धार्मिक त्योहारों पर संघ परिवार व उसके विभिन्न प्रकोष्ठ संगठनों की अगुवाई में, प्रशासन की नाक के नीचे से रैलियों का आयोजन किया जाता है। संघी लम्पटों की गाड़ियों में या रास्ते में विभिन्न जगह डीजे के ज़रिये बहुत भोंड़े और भद्दे मुस्लिम-विरोधी हिंस्र साम्प्रदायिक गीत बजाये जाते हैं। जानबूझकर मस्जिदों के सामने या मुस्लिम इलाक़ों को टारगेट किया जाता है। मुस्लिमों को उकसाया जाता है कि वो कुछ करें ताकि तोड़-फोड़, आगजनी की स्थिति पैदा की जा सके और पूरे माहौल को साम्प्रदायिक बनाया जा सके। सभी जानते हैं आर.एस.एस. और भाजपा लगातार इस किस्म की हरक़तों से साम्प्रदायिक उन्माद और हिंसा फैलाने की कोशिश करती है, लेकिन इन ग़ैर-कानूनी दंगाई हरक़तों पर प्रशासन मौन धारण किये रहता है। वजह साफ़ है: प्रशासन स्वयं इन साम्प्रदायिक फ़ासीवादी दंगाइयों के हाथ में है।

इसके कई उदाहरण इस बार काँवड़ यात्रा के दौरान भी देखने को मिले। इस बीच जो हिन्दू गाने त्योहारों पर रास्ते में या जुलूस में बजाये जा रहे हैं, उनमें कुछ गीतों के बोल इस तरह हैं 'टोपी वाला भी सर झुकाकर जय श्री राम बोलेगा', 'सुन लो मुल्लो पाकिस्तानी, गुस्से में हैं बाबा बर्फानी', 'जो छुएगा हिन्दुओं की बस्ती को, मिटा डालेंगे उसकी हस्ती को' आदि। इन मौकों पर इकट्ठा भीड़ का फ़ायदा उठाकर मुस्लिम दुकानों, घरों या मस्जिदों पर जबरिया भगवा झण्डा आदि लगाने के ज़रिये भी उकसाने की कोशिश होती है। माहौल ख़राब होने पर मरने वाले हमेशा ग़रीब घरों के बच्चे व युवा ही होते है। इस खेल में भाजपाइयों का मुहरा बनने से ज़्यादा मूर्खतापूर्ण काम ग़रीब मेहनतकशों के लिए और कुछ नहीं हो सकता है। उन्हें अपनी आँखें खोलनी चाहिए और समझ लेना चाहिए कि धर्म को लेकर फैलाये जा रहे उन्माद में उन्हें कतई नहीं बहना चाहिए। धर्म सभी का व्यक्तिगत मसला है और उसे राजनीति और सामाजिक जीवन में हमें प्रवेश करने ही नहीं देना चाहिए।

त्योहार तो बहाना है, असल मुद्दों से ध्यान भटकाना है! त्योहारों के आड़ में हमेशा मज़दूरों-मेहनतकशों को ही क्यों बलि चढ़ने के लिए तैयार किया जाता है? इन घटनाओं में कभी अमीरज़ादे और धन्नासेठ क्यों नहीं मरते? वे बस चाकू-छुरे, सिलेण्डर, तलवार, वगैरह सप्लाई करते हैं और इनका इस्तेमाल करके एक-दूसरे को मारने का काम हम ग़रीब मेहनतकशों का होता है, ताकि साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण बढ़े, उन्माद बढ़े और उसका राजनीतिक फ़ायदा इन धन्नासेठों की पार्टी भाजपा को मिले। तय आपको करना है कि इनके इस गन्दे खेल में आपको प्यादा बनना है या नहीं।

हमें धर्म-जाति के मसलों में उलझा कर, आपस में लड़ाकर, हमारी असल लड़ाई से दूर कर दिया जाता है। एक तरफ़ चार नये लेबर कोड के ज़रिये मज़दूरों के काम के घण्टों को क़ानूनी तौर पर बढ़ाकर 12 घण्टे किया जा रहा है, मँहगाई चरम पर है और जन-कल्याणकारी योजनाओं में किया जा रहा ख़र्च हर बार के बजट में घटाया जा रहा है, पूँजीपतियों को तमाम छूटें और एक रुपया एकड़ पर ज़मीनें दी जा रही है, जबकि जनता को महँगाई और बेरोज़गारी की चक्की में पीस दिया गया है। कुल मिलाकर, मुनाफ़े की घटती दर से बिलबिलाये पूँजीपति वर्ग की सेवा में मोदी सरकार पूरी मुस्तैदी से डटी हुई है। लेकिन इसका दूसरा पहलू यह है कि सरकार की जन-विरोधी नीतियों के कारण लोगों में असन्तोष बढ़ रहा है। ऐसी स्थिति में जनता का ध्यान असली समस्याओं से हटाने के लिए ही धार्मिक त्योहारों व आम तौर पर धर्म का इस्तेमाल कर साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की निरन्तरता को बनाये रखना भाजपा व संघ परिवार की फ़ासीवादी राजनीति की ज़रूरत है। इन तमाम कार्यक्रमों के लिए फ़ासीवाद सरकारी मशीनरी का अपने हिसाब से बख़ूबी प्रयोग करता है क्योंकि फ़ासीवाद आज तमाम राजकीय संस्थाओं और उपकरणों में पैठ जमा चुका है। आज इसका जवाब मज़दूर वर्गीय एकजुटता के दम पर ही दिया जा सकता है।

पिछले लम्बे समय से भाजपा, आरएसएस के लोग इन त्योहारों को अपनी राजनीति का अखाड़ा बनाने में लगे हैं। आज पूरे देश में धार्मिक त्योहारों को साम्प्रदायिक रंग दिया जा रहा है। धर्म के नाम पर की जा रही इस राजनीति और फिर अम्बेडकर अस्पताल के आपराधिक रवैये ने ही अनमोल की जान ली है। घटना के बाद से इस सवाल को भी दबाया जा रहा है कि इस कार्यक्रम के आयोजक संगठन भी इस मौत के लिए ज़िम्मेदार हैं। ये लोग इलाक़े में अपनी नज़र छिपाते हुए घूम रहे हैं और मसले को 'दुर्घटना' का नाम देने में लगे हैं। ये बात दिन के उजाले की तरह साफ़ है कि, मज़दूरों-मेहनतकशों की लूट पर टिकी ये व्यवस्था हमें और हमारे बच्चों को मौत के अलावा कुछ नहीं दे सकती। हम मज़दूरों के बच्चे इस व्यवस्था के लिए मात्र कीड़े के समान हैं, जिनकी मौत से किसी "हिन्दू हितैषी" सरकार को कोई फ़र्क नहीं पड़ता। लेकिन चुनना हमें है या तो हम इनकी साम्प्रदायिक राजनीति में बहकर अपने बच्चों को दंगाई बनने देंगे, या असली मुद्दों पर एकजुट होकर मज़दूरों की एकता बनायेंगे? आख़िर कब तक हम चुपचाप बैठकर एक और अनमोल के मरने का इन्तज़ार करते रहेंगे?

हमें लूटने वाली सरकार, मालिक और पूरा अस्पताल प्रशासन एक है। इसलिए इस अपवित्र गठजोड़ को हम मज़दूरों को अपनी जुझारू वर्गीय एकजुटता से जवाब देना होगा।

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) द्वारा अस्पताल प्रशासन और संघी दुष्प्रचार का लगातार

(पेज 4 पर जारी)

दिल्ली में म्यूनिसिपल कर्मचारियों की हड़ताल

भाजपा का मज़दूर-कर्मचारी-विरोधी चेहरा एक बार फिर हुआ बेनक़ाब!

आन्दोलन जीतना है तो एमसीडी कर्मचारियों को नेतृत्व कर रही संशोधनवादी ट्रेड यूनियन सीटू का असली चरित्र भी जान लेना चाहिए!

● नीशू

दिल्ली में 'सिविक सेण्टर' के बाहर क़रीब 5200 एमसीडी कर्मचारी हड़ताल पर बैठे हैं। ये कर्मचारी 29 सितम्बर से 'समान काम के लिए समान वेतन', बकाया भुगतान और नौकरी की सुरक्षा जैसी माँगों को लेकर हड़ताल पर हैं। ग़ौरतलब है कि दिल्ली नगर निगम के तहत 'मल्टी-टास्किंग स्टाफ' (MTS) , डोमेस्टिक ब्रीडिंग चेकर्स (DBC) और 'सिविक फील्ड वर्कर्स' (CFW) काम करते हैं जो घरों और सार्वजनिक स्थानों में मच्छर के लार्वा के प्रजनन स्थलों की पहचान और नष्ट करना, नागरिकों को मच्छर जनित रोगों (जैसे डेंगू, मलेरिया) के बारे में जागरूक करना, स्वच्छता और जल संचयन के महत्व पर जानकारी देना आदि तरह के काम करते हैं। एमसीडी के ये कर्मचारी अपनी जान जोखिम में डालकर इन कामों को अंजाम देते हैं लेकिन दिल्ली में "चार इंजन" की सरकार इन्हें बुनियादी सुरक्षा देने में नाकाम है। ड्यूटी के दौरान जोखिम भरे हालात में काम करने वाले कर्मचारियों की मौत होने पर उनके परिजनों को नौकरी तक नहीं दी जाती है। बीमारी की स्थिति में, काम पर न आ पाने की सूरत में, जितने दिन काम पर नहीं आये उतने दिन की तनख़्वाह काट ली जाती है। "एक देश एक टैक्स" और "एक देश एक चुनाव" का राग अलापने वाली भाजपा सरकार देश की राजधानी में इन कर्मचारियों को कहीं 12 हज़ार रुपये तो कहीं 20 हज़ार रुपये में खटा रही है लेकिन "एक काम एक वेतन" नहीं दे रही है! एक ही विभाग के अन्दर छ: अलग अलग वेतनमान लागू होते हैं। 5200 कर्मचारियों में मात्र 212 लोगों को 27 हज़ार रुपये वेतन मिलता है।

ज़ाहिरा तौर पर आज की महँगाई के अनुसार यह वेतन नाकाफ़ी है और एमसीडी के हमारे साथी अपनी वाज़िब माँगों को लेकर संघर्ष कर रहे हैं। यह संघर्ष सीटू से सम्बद्ध 'एण्टी मलेरिया एकता कर्मचारी यूनियन' के बैनर तले चल रहा है। लेकिन सीटू जैसी तमाम ट्रेड यूनियनों की सच्चाई यह है कि ये यूनियनें मज़दूर वर्ग से ऐतिहासिक तौर पर ग़द्दारी कर चुकी हैं। ये और इनकी आका पार्टियाँ पूँजीवादी व्यवस्था की अन्तिम सुरक्षा-पंक्ति का काम करती हैं। जिन राज्यों में इनकी सरकारें हैं या थीं वहाँ इन्होंने पूँजीपरस्त नीतियों को धड़ल्ले से लागू करवाने का काम किया है। इतना ही नहीं, पिछले दिनों केरल में आशा कर्मियों की हड़ताल का दमन तक करने में इसी सीटू की आका पार्टी सीपीएम पीछे नहीं रही! आख़िर इस तरह का दोहरा चरित्र रखने वाला नेतृत्व हमारे एमटीएस के साथियों के आन्दोलन को कैसे सही दिशा दे सकता है, यह सवाल तो उठता है।

सर्वहारा वर्ग के महान शिक्षक लेनिन ने 'हड़ताल' को 'युद्ध की पाठशाला' कहा है। यह एक ऐसी पाठशाला है जिसमें मज़दूर वर्ग पूरी जनता को, मेहनत करने वाले तमाम लोगों को पूँजी के जुए से मुक्ति के लिए अपने दुश्मनों के ख़िलाफ़ युद्ध करना सिखाता है। एमटीएस के कर्मचारियों को भी समझना होगा कि हड़ताल महज कुछ वेतन-भत्ते की मामूली बढ़ोत्तरी हासिल करने का ज़रिया मात्र नहीं बल्कि इस शोषणकारी व्यवस्था के अन्त की दिशा में एक अहम क़दम है। इसलिए हड़ताल का नेतृत्व भी सही हाथों में होना चाहिए।

इन तमाम माँगों के साथ-साथ हमें पूँजीवादी व्यवस्था की गतिकी को भी समझना होगा और साथ ही हमारे देश के मौजूदा हालात को भी समझना होगा। दरअसल यह व्यवस्था पूँजीपति वर्ग के हितों की ही नुमाइन्दगी करती है जिनके अलग-अलग हिस्सों का प्रतिनिधित्व पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियाँ (भाजपा, आप, काँग्रेस व नकली लाल झण्ड़े वाली पार्टियाँ) करती हैं। ये पार्टियाँ अपने आकाओं को ध्यान में रखकर नीतियाँ बनाती हैं। मौजूदा दौर में पूँजीवादी व्यवस्था दीर्घकालिक मन्दी के असमाधेय संकट से गुज़र रही है। पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े की दर में कमी आयी है, जिससे निपटने के लिए दुनिया के तमाम देशों सहित अपने देश में भी, पूँजीपति वर्ग सबसे प्रतिक्रियावादी, दक्षिणपन्थी, मज़दूर-विरोधी और फ़ासीवादी सरकारों को चुन रहा है। भारत में फ़ासीवादी मोदी सरकार का सत्ता में आना इसी की बानग़ी है। यहाँ के पूँजीपति वर्ग को भी ऐसी सरकार की ज़रूरत थी जो लोहे के हाथों से उन नीतियों को लागू करे जो मुनाफ़े की राह में सभी परेशानियों को हटा दे और पूँजी के लिए रास्ता साफ़ करे। 2014 में सत्ता में आने के बाद फ़ासीवादी मोदी सरकार ने सबसे पहले श्रम क़ानूनों में मज़दूर-विरोधी और पूँजीपरस्त बदलाव किये और मज़दूर-विरोधी चार लेबर कोड लेकर आयी। उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों को लागू करने का काम 1990 में काँग्रेस पार्टी ने किया, लेकिन भाजपा ने उसको लागू करने के पिछले सारे रिकॉर्ड तोड़ दिये हैं। इन्हीं पूँजीपरस्त नीतियों के चलते सरकारी विभागों में स्थायी नौकरियों को ख़त्म कर लोगों को ठेके-संविदा पर खटाया जा रहा है।

यह रिपोर्ट लिखे जाने तक एमसीडी कर्मचारियों की हड़ताल के 20 दिन पूरे हो चुके हैं लेकिन अभी तक कोई ठोस नतीजा नहीं निकला है। एमसीडी के कर्मचारियों समेत अन्य जगहों पर ठेके-संविदा पर काम कर रहे मज़दूर व कर्मचारी साथियों को यह समझ हासिल करनी होगी कि अपनी तात्कालिक आर्थिक माँगों की लड़ाई के साथ ही हमें दूरगामी लड़ाई की तैयारी भी करनी होगी जोकि इस व्यवस्था को चुनौती दे सके। इन दोनों ही लड़ाइयों में क्रान्तिकारी हिरावल ही आन्दोलन को सही नेतृत्व दे सकता है, न कि कोई मौक़ापरस्त और समझौतावादी नेतृत्व। यही हमारे तात्कालिक संघर्षों की सफलता को भी सुनिश्चित करेगा और यही इस मानवद्रोही मुनाफ़ा केन्द्रित व्यवस्था से मुक्त करने की हमारी दूरगामी लड़ाई में भी अग्रसर होने के लिए आवश्यक है।

...आपराधिक लापरवाही के कारण नौजवान की मौत

(पेज 3 से आगे)

पर्दाफ़ाश किया जा रहा है। मज़दूर पार्टी की तमाम गतिविधियों के कारण आरएसएस, बजरंग दल के दलालों द्वारा इलाक़े में कई अफ़वाहें भी उड़ायी गयी, लेकिन लोगों ने अपनी एकता के दम पर उन्हें चूहे की तरह बिल में छुपने के लिए मज़बूर कर दिया। साथ ही RWPI द्वारा इलाक़े में निम्न गतिविधियाँ जारी हैं:

• भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी द्वारा इलाक़े में घायलों की मदद हेतु हरसम्भव प्रयास किये जा रहे हैं।

• मृतक अनमोल के निष्पक्ष पोस्टमार्टम के लिए प्रशासन को डॉक्टर्स का विशेष बोर्ड गठित करने के लिए मजबूर किया गया।

• इलाक़े में मेडिकल कैम्प लगाया गया, जिसमें घायलों को पट्टी करना, घाव साफ़ करना और उचित उपचार मुहैया कराना शामिल था।

• फ़ासीवादी एजेण्डे को नाक़ाम करते हुए पूरे इलाक़े में सघन अभियान चलाया गया। नुक्कड़-सभाओं का आयोजन किया गया। सघन पर्चा वितरण किया गया।

• पाँच मन्दिर, शाहाबाद डेरी में जन पंचायत का आयोजन किया गया, जिसमें संघ की पोल-पट्टी खोलते हुए विस्तार से बात रखी गयी और लोगों को इस पूरे मसले के प्रति जागरूक किया गया।

• इलाक़े के अलग-अलग हिस्सों में संघियों और अस्पताल प्रशासन की मिलीभगत को उजागर करते हुए दो रैलियाँ निकाली गयीं।

• दोषियों पर क़ानूनी कार्यवाही करने और पीड़ितों को मुआवज़ा देने हेतु प्रशासन पर दवाब बनाया जा रहा है।

मनरेगा मज़दूरों की माँग: 'पूरे साल काम दो, काम के पूरे दाम दो!'

● बिगुल संवाददाता

कलायत (हरियाणा), मनरेगा मज़दूरों ने 'क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन' के नेतृत्व में अपनी लम्बित माँगों को लेकर बीडीपीओ कार्यालय पर प्रदर्शन करके बीडीपीओ रितु को ज्ञापन सौंपा। मज़दूरों का कहना था कि उन्हें मनरेगा के तहत मिलने वाले क़ानूनी अधिकारों से वंचित किया जा रहा है।

ज्ञापन सौंपने से पहले मज़दूरों ने ज़ोरदार प्रदर्शन किया और जनसभा के दौरान अपनी समस्याओं को साझा करते हुए जनसुनवाई की। प्रदर्शन में गाँव सिमला, चौशाला, पिंजुपुरा, रामगढ़, हरिपुरा आदि के मज़दूर शामिल हुए।

यूनियन के साथी अजय ने कहा कि एक तरफ़ मोदी सरकार लगातार मनरेगा का बजट घटा रही है, तो दूसरी तरफ़ हरियाणा की नायब सैनी सरकार ने मनरेगा के तहत रोज़गार लगभग ख़त्म कर दिया है। प्रदेश में कृषि क्षेत्र की न्यूनतम मज़दूरी ₹493 है, जबकि मनरेगा मज़दूरों को मात्र ₹400 मिलते हैं। यह सरकार की मज़दूर-विरोधी और गरीब-विरोधी मानसिकता को दर्शाता है। जब से पूँजीपतियों की सबसे चहेती और वफ़ादार पार्टी भाजपा सत्ता में आयी है, तब से मनरेगा योजनाओं को असफल बनाने की साज़िश चल रही है – यह सीधा हमला है गरीबों और मज़दूरों पर।

अजय ने आगे कहा कि वैसे तो मनरेगा क़ानून के अन्तर्गत 100 दिन के रोज़गार की बात ही अपने आप में इस देश के मज़दूरों और गरीबों के साथ एक भद्दा मज़ाक़ है क्योंकि 'रोज़गार' का मतलब ही है रोज़ किया जाने वाला काम। इसलिए असल माँग तो साल के 365 दिन पक्के रोज़गार की गारण्टी की होनी चाहिए। लेकिन अभी तो सरकार अपने द्वारा ही बनाये क़ानून के तहत 100 दिन का रोज़गार देने से भी भाग रही है। आँकड़ों के अनुसार पूरे देश में और कलायत में भी मनरेगा के तहत सालाना औसतन 25–30 दिन का ही काम मिल पाता है। गाँवों में बढ़ती महँगाई के बीच मज़दूरों द्वारा अपने परिवार का गुज़ारा करना कठिन हो गया है। ऐसे में मनरेगा ही देहाती क्षेत्र में मज़दूरों का एक सहारा है, लेकिन सरकारें लगातार इसके बजट और कार्यदिवसों में कटौती कर रही हैं।

ऐसे में ज़रूरी है कि हम न सिर्फ मौजूदा क़ानून के अमल के लिए संगठित होकर सरकारों पर दबाव बनायें बल्कि रोज़गार के वास्तविक अधिकार के लिए भी एकजुट होकर संघर्ष खड़ा करें।

'मनरेगा बचाओ मोर्चा' के साथी धीरज ने कहा कि सरकार की मज़दूर-विरोधी नीतियों के कारण मनरेगा मज़दूरों का हक़ छीना जा रहा है। गाँव की सड़कों की मरम्मत, स्कूल और खेल मैदानों की देखभाल, तालाब-नहर की सफाई, श्मशान भूमि का रखरखाव जैसे कच्चे कार्य या तो बन्द कर दिये गये हैं या बहुत सीमित हो गये हैं। इसका नतीजा है कि आज मनरेगा में रोज़गार लगभग समाप्त हो गया है।

प्रदर्शन में तय किया गया कि 'मनरेगा बचाओ' और 'काम के सवाल' को लेकर पूरे प्रदेश के मनरेगा मज़दूरों को 21 नवम्बर को दिल्ली में मोदी सरकार का घेराव करना चाहिए।

'क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन' के बैनर तले एकजुट मज़दूरों ने मुख्य रूप से निम्नलिखित माँगें रखीं:

कम से कम 100 दिन के काम की गारण्टी: मज़दूरों ने कहा कि उन्हें क़ानून के अनुसार पूरे 100 दिन का रोज़गार नहीं मिल रहा, मुश्किल से 20–30 दिन का ही काम दिया जाता है। उनकी माँग है कि हर मज़दूर परिवार के लिए साल में कम से कम 100 दिन का रोज़गार सुनिश्चित किया जाये।

'कार्य रोक' आदेश वापस लो: 5 अगस्त 2025 को राष्ट्रीय स्तर की निगरानी टीम की रिपोर्ट के आधार पर आयुक्त-मनरेगा/अपर निदेशक, हरियाणा द्वारा मनरेगा के कुछ कार्यों पर लगायी गयी रोक क़ानूनी और तथ्यात्मक दृष्टि से ग़लत है। इस आदेश से लाखों ग्रामीण मज़दूरों की आजीविका और गरिमा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। अतः इस आदेश को तत्काल प्रभाव से वापस लिया जाये।

रुके हुए कार्य फिर शुरू करो: जिन कार्यों पर रोक लगी है — जैसे मिट्टी कार्य, तालाब गहरीकरण, खेत-तालाब निर्माण, जल संरक्षण कार्य, नहर सफाई आदि — उन्हें फिर "मंज़ूरीशुदा काम" की श्रेणी में शामिल कर तर्कसंगत ढंग से फिर से शुरू किया जाये।

बकाये वेतन का भुगतान: मेटों और मज़दूरों को पिछले दो वर्षों से किये गये काम का वेतन नहीं मिला है। मज़दूरों ने तत्काल बकाया भुगतान की माँग की।

बेरोज़गारी भत्ता दो: मनरेगा कानून के अनुसार, काम माँगने के 15 दिन के भीतर रोज़गार न मिलने पर मज़दूरों को बेरोज़गारी भत्ता दिया जाना चाहिए। मज़दूरों ने बेरोज़गारी भत्ता और मेटों के बकाया वेतन के तुरन्त भुगतान की माँग की।

खाँसी की दवा पीने से 20 से ज़्यादा बच्चों की मौतें

इन बच्चों की मौतों के लिए दवा कम्पनियों की मुनाफ़ाखोरी और भ्रष्ट सरकारी तंत्र का गठजोड़ ज़िम्मेदार है!

● ज्योति

देशभर में एक बार फिर से दवाओं में मिलावट और औषधि बनाने वाली फ़ार्मास्यूटिकल कम्पनियों की मुनाफ़ाखोरी की क़ीमत मासूम ज़िन्दगियों ने चुकायी है। हाल ही में सामने आयी रिपोर्टों के अनुसार, मध्य प्रदेश के परासिया में कोल्ड्रिफ नामक सिरप के सेवन से 20 बच्चों की मौत हो गयी, जबकि 10 से अधिक बच्चे गम्भीर हालत में अस्पताल में भर्ती हैं। यह सिरप श्रीसन फ़ार्मास्युटिकल्स द्वारा निर्मित था। इसी प्रकार राजस्थान में कैसन्स फ़ार्मा द्वारा तैयार खाँसी के सिरप के सेवन से 12 बच्चों की जान चली गयी। मध्यप्रदेश के ही ग्वालियर ज़िले में दूषित खाँसी के सिरप से हुई बच्चों की मौतों के मामले के ठीक कुछ दिन बाद ही एक सरकारी अस्पताल में सरकार द्वारा आपूर्ति की गयी एज़िथ्रोमाइसिन सिरप की बोतल में कीड़े पाये जाने की घटना सामने आयी है। एक महिला ने शिकायत की कि जब उसने अपने बच्चे को देने के लिए सिरप की बोतल खोली, तो उसमें कीड़े दिखायी दिये। इसके बाद अस्पताल प्रशासन ने इस दवा के पूरे बैच (लगभग 306 बोतलों) को सील कर दिया और नमूने भोपाल व कोलकाता की प्रयोगशालाओं में परीक्षण हेतु भेजे गये। इन सभी हादसों ने एक बार फिर सरकारी स्वास्थ्य व्यवस्था पर सवाल खड़े कर दिये हैं। इसके साथ ही ये घटनाएँ इस बात का भी प्रमाण हैं कि दवा उद्योग में मुनाफ़ाख़ोरी और सरकार की मिलीभगत का ख़ामियाज़ा किस प्रकार सीधे तौर पर आम जनता को अपनी ज़िन्दगी से भरना पड़ता है।

बात अगर ज़हरीली दवाओं की की जाये तो हमें यह समझना होगा कि एक सामान्य-सी दिखने वाली दवा कैसे इतनी घातक बन जाती है। दरअसल प्रत्येक दवा दो प्रकार की चीज़ों को मिलाकर बनती है - पहला उसके सक्रिय तत्व, जो बीमारी का उपचार करते हैं, और दूसरे उसके सहायक तत्व, जो यह सुनिश्चित करते हैं कि दवा शरीर के उचित हिस्से तक पहुँचे। इसलिए किसी भी औषधि को सुरक्षित घोषित करने से पहले उस पर अनेक प्रकार के परीक्षण (clinical trials) किये जाने आवश्यक होते हैं। सिरपों में प्रायः ग्लिसरीन और प्रोपिलीन ग्लाइकोल को सुरक्षित सहायक तत्व के रूप में उपयोग किया जाता है, लेकिन अक्सर पाया गया है कि लागत घटाने के उद्देश्य से कई कम्पनियाँ इनकी जगह सस्ते में उपलब्ध डाइएथिलीन ग्लाइकोल (DEG) का प्रयोग करती हैं जो कि एक विषैला औद्योगिक सॉल्वेंट है। DEG का सम्मिलन दवाओं को घातक बना देता है, क्योंकि यह एक ऐसा पदार्थ है जोकि लिवर, दिमाग़ और दिमाग़ की कोशिकाओं को गम्भीर रूप से नुकसान पहुँचा सकता है और इसलिए अन्त में जान बचाने वाली दवा ही मरीज़ की मृत्यु का कारण बन जाती है।

दुर्भाग्यवश, यह समस्या नयी नहीं है। भारत ही नहीं विश्व के कई देशों में डाइएथिलीन ग्लाइकोल के कारण सैकड़ों बच्चों की मौतें दर्ज की जा चुकी हैं। कई फ़ार्मा कम्पनियों के द्वारा लगातार की जा रही इस प्रकार की मिलावट की वजह से हाल के वर्षों में भारतीय कम्पनियों द्वारा निर्मित और निर्यात किये गये सिरपों से अफ्रीका के गाम्बिया में 70 और उज़्बेकिस्तान में 17 बच्चों की मृत्यु हुई थी जिसके चलते इन्हें विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) और FDA (अमरीकी स्वास्थ्य संस्था) द्वारा बैन किया जा चुका है। वहीं भारत में ये दवाएँ ख़ुद सरकारी अस्पतालों में मुहैया की जा रही हैं! अक्सर ऐसा होता रहा है कि इस प्रकार के मामलों में जो भी जनहानि और मौतें होती हैं उनका और इस पूरी दुर्व्यवस्था का ठीकरा डॉक्टरों के सर फोड़ दिया जाता है, लेकिन सवाल यह है कि असल में इन मौतों के लिए ज़िम्मेदार कौन है?

दरअसल भारत में दवाओं की सुरक्षा और गुणवत्ता की निगरानी का दायित्व केन्द्रीय औषधि मानक नियन्त्रण संगठन (Central Drugs Standard Control Organisation – CDSCO) पर होता है, जो स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मन्त्रालय के अधीन कार्य करता है। इसके प्रमुख, ड्रग्स कण्ट्रोलर जनरल ऑफ इण्डिया (DCGI), नई दवाओं की स्वीकृति, नैदानिक परीक्षणों की अनुमति, और दवा सुरक्षा की निगरानी के लिए ज़िम्मेदार होते हैं। किसी भी दवा को बाज़ार में बेचने से पहले उसे तीन चरणों में नैदानिक परीक्षणों (Phase I, II और III Trials) से गुज़रना पड़ता है, जिनका उद्देश्य उसकी सुरक्षा, प्रभावशीलता और ख़ुराक निर्धारित करना होता है। इन परीक्षणों की रिपोर्टों का मूल्यांकन विशेषज्ञ समितियों द्वारा किया जाता है, जिसके बाद ही DCGI उस दवा को भारत में विपणन की अनुमति (Marketing Authorization) देता है। इसके अतिरिक्त, राज्य औषधि नियन्त्रण विभाग (State Drug Control Departments) अपने-अपने राज्यों में दवाओं के निर्माण, वितरण और बिक्री की निगरानी करते हैं। भारत में औषधि नियमन का आधार Drugs and Cosmetics Act, 1940 और Drugs and Cosmetics Rules, 1945 हैं, जिनके तहत दवा निर्माण के मानक, लेबलिंग, लाइसेंसिंग और परीक्षण की सभी प्रक्रियाएँ निर्धारित होती हैं। ऐसे नियामक ढाँचे के मौजूद होने के बावजूद, ऐसे 'हादसों' का होना बिना राजनीतिक हस्तक्षेप और सरकारी मिलीभगत के हो पाना नामुनकिन है। वास्तविकता तो यह है कि यह पूँजीवादी व्यवस्था दवा कम्पनियों के हितों और उनके मुनाफ़े को आम जानता के स्वास्थ्य के ऊपर रखती है जिसके कारण ऐसी असुरक्षित और घटिया दवाएँ आम जनता तक पहुँच पाती हैं।

दवा के नाम पर ज़हर
'इण्डियन एक्सप्रेस' अख़बार में छपा कार्टून

मिलावटी और नकली दवाओं का निर्माण जनता के जीवन के साथ सीधा खिलवाड़ है। मिलावटी और नकली दवाओं इतना विशाल नेटवर्क सरकारी संस्थानों की खुली या मौन सहमति के बिना सम्भव नहीं। परासिया की घटना इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। मौतों के बाद, मध्य प्रदेश सरकार ने शुरू में कोल्ड्रिफ सिरप में किसी भी मिलावट के आरोपों को नकार दिया और निर्माता कम्पनी का बचाव किया। लेकिन तमिलनाडु की सरकारी प्रयोगशाला में परीक्षण के बाद जब मिलावट की पुष्टि हुई, तो सरकार को शर्मनाक यू-टर्न लेना पड़ा। इसके बावजूद, कम्पनी के शीर्ष प्रबन्धन पर कार्रवाई करने के बजाय सिरप लिखने वाले डॉक्टरों को दोषी ठहराया गया और उन्हें निलम्बित कर दिया गया!

राजस्थान में स्थिति और भी चिन्ताजनक रही। वहाँ सरकार ने एक माँ को गिरफ्तार कर लिया जिसने सिरप अपने बच्चे के लिए खरीदा था! दोषपूर्ण बैच की बिक्री पर प्रतिबन्ध लगाने के अलावा कम्पनियों पर कोई ठोस कार्रवाई नहीं की गयी। यह खाद्य सुरक्षा और औषधि नियन्त्रण विभाग की सीधी विफलता है, जिसकी ज़िम्मेदारी है कि वह नकली दवाएँ बनाने वाली कम्पनियों की पहचान करे और उन पर कठोर कार्रवाई करे।

कई सूत्रों के अनुसार राजस्थान के उप औषधि संग्राहक राजाराम शर्मा ने "नकली दवाओं" की परिभाषा में ऐसा संशोधन किया जिससे लगभग 14–15 कम्पनियों को सार्वजनिक स्वास्थ्य से खिलवाड़ करने की छूट मिल गयी। विभाग अब केवल शर्मा को दोषी ठहराने की कोशिश कर रहा है, जबकि सबूत यह दर्शाते हैं कि अन्य वरिष्ठ अधिकारी भी इस गड़बड़ी में शामिल थे। लोकसभा में नकली दवाओं का मुद्दा उठने के बावजूद, विभाग के ख़िलाफ़ अब तक कोई कार्रवाई नहीं हुई है। इस लापरवाही की क़ीमत निर्दोष बच्चों ने अपनी जान देकर चुकायी है।

यह स्थिति इस गम्भीर प्रश्न को जन्म देती है कि क्या ऐसी मौतों को हत्या या कम से कम ग़ैर-इरादतन हत्या नहीं माना जाना चाहिए? मूलतः दवाएँ मानव जीवन की रक्षा और उपचार के लिए बनायी जाती हैं, लेकिन आज की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में उनका निर्माण मुनाफे के उद्देश्य से किया जा रहा है। यदि दवाओं की प्रभावशीलता और सुरक्षा ही सुनिश्चित नहीं की जायेगी, तो स्वयं दवाएँ ही मृत्यु या गम्भीर चिकित्सीय समस्याओं का कारण बन जायेंगी! दवा निर्माण को लोक स्वास्थ्य नीति से जोड़ना आवश्यक है, लेकिन भारत में यह प्रक्रिया लगभग पूरी तरह से निजी कम्पनियों के नियन्त्रण में है जो केवल अपने लाभ को प्राथमिकता देती हैं। आँकड़ों के अनुसार, भारतीय दवा उद्योग आज दुनिया का चौथा सबसे बड़ा निर्माता है, जिसकी वार्षिक घरेलू आय लगभग ₹20,000 करोड़ और निर्यात से होने वाला कारोबार करीब ₹10,000 करोड़ है। लेकिन intellectual property rights यानी ज्ञान को निजी सम्पत्ति घोषित करने वाले कानून और कम्पनियों के निजी स्वार्थों के चलते दवाएँ अनावश्यक रूप से महँगी हैं और उनका उत्पादन मुनाफे की भूख से प्रेरित है। कई जाँच-पड़तालों में पाया गया है कि भारत में बिकने वाली लगभग 20 प्रतिशत दवाएँ नकली या मिलावटी हैं और विश्वभर में पाये जाने वाले ऐसे उत्पादों में 75 प्रतिशत भारतीय दवाएँ हैं।

जिस प्रकार उपरोक्त मामलों में किसी डॉक्टर को या फिर किसी एक अफ़सर को दोषी ठहराया गया और समस्या के जड़ के तौर पर पेश किया गया, वह दरअसल इन तमाम मामलों को व्यवस्थागत मसला के तौर पर पेश न करके एक अफ़सर की कामचोरी या एक डॉक्टर की लापरवाही का मसला बना कर रख देती है। आज हम सबको यह समझने की ज़रूरत है कि जब तक आवश्यक दवाओं का उत्पादन मुनाफे और निजी स्वार्थों से प्रेरित रहेगा, तब तक बाज़ार में महँगी, अप्रभावी, नकली और मिलावटी दवाएँ मिलती रहेंगी और इसका खामियाजा देश की आम जनता को भुगतना पड़ेगा। यह हालिया घटनाएँ एक बार फिर हमें इस सच्चाई से अवगत कराती हैं कि जबतक यह व्यवस्थागत ढाँचा बदला नहीं जायेगा और स्वास्थ्य सेवाओं को एक मूलभूत अधिकार न मानकर निजी हाथों में मुनाफ़ाख़ोरी का ज़रिया मात्र बनाकर रखा जायेगा, यह समस्या जड़ से हल नहीं की जा सकती है। ऐसा होना तभी सम्भव है जब एक वास्तविक जन पक्षधर स्वास्थ्य व्यवस्था हमारे पास हो।

सोचो, समझो, सावधान रहो!

"लोगों पर नियंत्रण करने और उन्हें पूरी तरह अपने वश में कर लेने का सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि उनकी आज़ादी थोड़ी-थोड़ी छीनी जाये, अधिकारों को एक हज़ार छोटी-छोटी और पता भी न चलने वाली कटौतियों से कम किया जाये। इस तरीक़े से, लोगों को इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं के छिनने का पता ही नहीं चलेगा और जब उन्हें पता चलेगा तब तक इन बदलावों को वापस लौटाना नामुमकिन हो जायेगा।"

— एडोल्फ़ हिटलर, माइन कैम्फ़ (आत्मकथा) में

‘आई लव मुहम्मद’ विवाद और उसका फ़ासीवादी साम्प्रदायिक इस्तेमाल

● प्रसेन

एक पुरानी कहानी है कि एक भेड़िया झरने से ऊपर से पानी पी रहा था। नीचे जहाँ झरने का पानी गिर रहा था, वहाँ एक मेमना पानी पी रहा था। भेड़िया मेमने को खाना चाहता था। तो पहले इसके लिए बहाना बनाया कि- ‘तुमने मेरा पानी जूठा कर दिया।’ इस पर मेमने ने कहा कि- ‘पानी तो ऊपर से नीचे आ रहा है और ऊपर आप पानी पी रहे हैं। तो असल में आपका जूठा पानी मैं पी रहा हूँ।’ अब भेड़िये ने एक नया बहाना ढूँढा- ‘अच्छा तू वही है न जिसने एक साल पहले मुझे परेशान किया था।’ मेमना बोला कि महोदय अभी मुझे पैदा हुए ही छः महीने हुए हैं। बहाना काम न आते देख भेड़िया नाराज़ होकर बोला कि- ‘तू बहुत बोलता है!’ और यह कहकर मेमने पर झपट पड़ा।

तुलनाओं की अपनी समस्या होने के बावजूद वर्तमान समय में योगी सरकार का मुस्लिमों के साथ यही रवैया है। मुस्लिमों को निशाना बना कर साम्प्रदायिक हिन्दू मानस को तुष्ट करने, साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण को व्यापक और गहरा बनाने और असली मुद्दों से ध्यान भटकाने के लिए योगी सरकार कुछ भी कर सकती है। अभी हाल में ही ‘आई लव मुहम्मद’ के पोस्टर-बैनर लगने के बाद जो घटनाक्रम सामने आया, वो इसका सबसे ताज़ा और ठोस उदाहरण है।

ज्ञात हो कि कानपुर के रावतपुर के सैय्यद नगर इलाक़े में 4 सितम्बर को बारावफ़ात (पैगम्बर मुहम्मद के जन्मदिवस पर) के जुलूस के दौरान मुस्लिमों ने ‘आई लव मुहम्मद’ का बैनर लगाया। हिन्दू संगठन इस बैनर को हटवाने के लिए अड़ गये। हंगामा खड़ा होने पर पहुँची कानपुर पुलिस ने “नई परम्परा” शुरू करने का हवाला देते हुए इस बैनर को हटवा दिया। बाद में नई परम्परा शुरू करने और माहौल बिगाड़ने के नाम पर नौ लोगों, 10-15 अज्ञात और दो वाहनों के नम्बर पर सवार अज्ञात के ख़िलाफ़ मुक़दमा दर्ज कर लिया। इस कार्यवाई के विरोधस्वरूप देश के विभिन्न हिस्सों में मुसलमान सोशल मीडिया पर ‘आई लव मुहम्मद’ का पोस्ट डालने लगे और कई जगहों पर पोस्टर लगाये। पुलिस ने इन पोस्ट/पोस्टर के लिए कार्रवाई करना शुरू कर दिया।

कानपुर में पुलिसिया कार्यवाई के बाद उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, तेलंगाना और महाराष्ट्र समेत कई राज्यों में मुस्लिमों द्वारा विरोध प्रदर्शन हुए। उन्नाव, बरेली, कौशाम्बी, लखनऊ, महाराजगंज, काशीपुर और हैदराबाद जैसे शहरों में रैलियाँ और सड़कों पर प्रदर्शन हुए हैं, जिनमें से कुछ जगहों पर पुलिस के साथ झड़प भी हुई। इस मामले में पूरे देश में अब तक 21 मामले दर्ज किए गये हैं और 1,324 मुस्लिमों पर आरोप लगाये गये हैं, जिनमें 38 गिरफ़्तारियाँ भी हुई हैं। उत्तर प्रदेश में इस मामले में अब तक सबसे अधिक 16 एफ़आईआर दर्ज हुई हैं और 1,000 से अधिक लोगों को आरोपी बनाया गया है।

कानपुर में मुस्लिमों पर एकतरफ़ा कार्यवाई के बाद पुलिस ने सफ़ाई देते हुए कहा कि यह कार्यवाई ‘आई लव मुहम्मद’ पर नहीं बल्कि नई परम्परा शुरू करने और माहौल ख़राब करने के लिए की गयी है। लेकिन सवाल यह है कि माहौल ख़राब करने में हिन्दू संगठन के लोग भी ज़िम्मेदार थे लेकिन उन पर कोई कार्यवाई क्यों नहीं हुई? अपनी धार्मिक आस्था के अनुसार पोस्ट डालना कैसे गुनाह हो गया? बजरंग दल से लेकर कई कट्टरपंथी हिन्दू संगठनों ने ‘आई लव महादेव’ से लेकर ‘आई लव योगी’ तक के पोस्टर, बैनर लगाये और सोशल मीडिया पर पोस्ट डाली। लेकिन तब इस “नई परम्परा” पर कोई कार्यवाई नहीं हुई। सोशल मीडिया पर मुस्लिम-विरोधी साम्प्रदायिक पोस्ट की बाढ़ आ गयी लेकिन इस पर भी कोई कार्यवाई नहीं हुई। हाथरस में एक प्रदर्शन में तो ‘आई लव यूपी पुलिस’, ‘आई लव योगी’ और ‘आई लव महादेव’ के बैनर लेकर लोग नारे लगा रहे थे- ‘यूपी पुलिस तुम लट्ठ बजाओ, हम तुम्हारे साथ हैं’! क्या इससे माहौल ख़राब नहीं होता?

खैर, पुलिस वालों की इस सफ़ाई पर कोई भी समझदार आदमी भरोसा नहीं करेगा! बाकी इस एकतरफ़ा पुलिसिया कार्यवाई का सच योगी आदित्यनाथ के घटिया नफ़रती बयान से और भी नंगे रूप में उजागर हो जाता है। इस मामले पर योगी आदित्यनाथ ने मुस्लिमों को धमकाते हुए (और धमकी उस काम के लिए, जो मुस्लिमों ने किया ही नहीं!) कहा कि - “लातों के भूत बातों से नहीं मानते।...कुछ लोगों को हिन्दू त्यौहार आते ही गर्मी होने लगती है। ऐसे लोगों की गर्मी शान्त करने के लिए डेंटिंग-पेंटिंग करनी पड़ती है।...एक मौलाना भूल गया था कि उत्तर प्रदेश में किसकी सरकार है, ऐसा सबक सिखायेंगे कि इनकी आने वाली जनरेशन दंगा करना भूल जायेगी।...दंगाइयों को जहन्नुम पहुँचा दिया जायेगा।” स्थिति बहुत साफ़ है कि पहले तो ऐसी परिस्थिति पैदा की जाती है कि मुस्लिम उसका विरोध करें। उसके बाद उनको प्रशासन और मीडिया के सहारे दंगाई घोषित कर एकतरफ़ा दमन की कार्यवाई की जाती है और फिर फ़ासीवादी सरकार इसके ज़रिये जनता में साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की घिनौनी राजनीति करती है।

वैसे देखा जाये तो देश का पूँजीवादी संविधान भी किसी व्यक्ति को उसकी आस्था के मुताबिक़ धार्मिक स्वतन्त्रता की गारण्टी देता है। लेकिन फ़ासीवादी ताक़तों के सत्ता में आने के बाद संविधान द्वारा जनता को मिले सीमित जनवादी अधिकारों को भी छीनती जा रही हैं। लोकतन्त्र का बस खोल बचा है। उसकी जनवादी अनर्वस्तु को लगातार कुतर-कुतर कर तेज़ी से ख़त्म कर दिया गया है। प्रशासन, न्यायपालिका, चुनाव आयोग जैसी सभी संस्थाओं पर फ़ासीवादी ताक़तों ने अन्दर से क़ब्ज़ा कर लिया है। मुख्यधारा की मीडिया फ़ासीवादी भाजपा के साथ एकदम नंगे रूप में खड़ी है। गाँवों-शहरों की व्यापक आम जनता में संघ परिवार व उसकी साम्प्रदायिक विचारधारा ने लम्बे समय से संस्थागत कार्यों के ज़रिये बहुत गहरी पैठ बना ली है। ऐसे में फ़ासीवादी ताक़तों द्वारा एक धर्म विशेष के लोगों को आतंकी, दंगाई बनाना और उसके दमन को ‘साम्प्रदायिक औचित्य’ प्रदान करना बहुत आसान हो जाता है। मज़ेदार बात यह है कि जनविरोधी क़ानून व नीति निर्माण, जन आन्दोलनों के दमन की तरह यह सारा काम ‘क़ानून-व्यवस्था’ के अन्तर्गत हो जाता है।

फ़ासीवादी भाजपा (ख़ासकर उत्तर प्रदेश में योगी सरकार और जबकि योगी मोदी को पीछे छोड़ने पर आमादा है) जनता के हक़ों पर डाका डालने के अपने कुकर्मों को छिपाने और देश की व्यापक जनता में बढ़ रहे असन्तोष को असली मुद्दों से हटाने के लिए बहुत निरन्तरता से साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की राजनीति को तेज़ करने के लिए बाध्य है। फ़ासीवादी भाजपा बहुत सोचे-समझे तरीक़े से साम्प्रदायिक उन्माद फैलाने के लिए त्यौहारों का इस्तेमाल कर रही है। संघ परिवार द्वारा हिन्दू त्यौहारों पर जानबूझकर मस्जिदों को ढकने, मुस्लिम इलाक़ों से जुलूस निकालने, मुस्लिम-विरोधी गाने बजाने, धार्मिक स्थलों पर पत्थर आदि फेंककर उकसाने की गतिविधियाँ अंजाम दी जाती हैं। किसी भी तरह का बवाल होने पर प्रशासन को स्पष्ट रहता है कि क्या करना है! बाकी काम गोदी मीडिया और संघ परिवार कर देता है। कोई मसला न मिलने पर ‘आई लव मुहम्मद’ का बैनर भी मसला बना दिया जाता है। फिर पुलिस प्रशासन एकतरफ़ा कार्यवाई करती है, गोदी मीडिया व संघ परिवार मुस्लिमों को उपद्रवी, दंगाई साबित करती है और योगी नवरात्रि, दुर्गा पूजा, दशहरा आदि हिन्दू त्यौहारों में विघ्न डालने वाले “दंगाइयों”, “राक्षसों” को जहन्नुम में पहुँचाने का ज़हरीला साम्प्रदायिक भाषण देते हैं।

वास्तव में, फ़ासीवादी भाजपा देश की व्यापक मेहनतकश जनता के हक़ों पर डाका डालकर मुट्ठीभर पूँजीपतियों की जी-तोड़ सेवा कर रही है। इनके कुकर्मों का भांडा फूट रहा है। सत्ता में आने के बाद से इनके पूँजीपरस्त, मेहनतकश-विरोधी, भ्रष्टाचारी चेहरे से रामनामी दुपट्टा उघड़ता जा रहा है। फ़ासिस्टों के छात्र-विरोधी, कर्मचारी-विरोधी, मज़दूर-विरोधी नीतियों के ख़िलाफ़ छात्रों, मेहनतकश जनता का असन्तोष तेज़ी से बढ़ रहा है। भाजपा द्वारा जनता पर लादे गये जीएसटी और पेट्रोलियम पर भारी टैक्स वसूली के चलते आसमान छूती महँगाई से लोग बुरी तरह त्रस्त हैं। भाजपा द्वारा पीएम केयर घोटाला से लेकर, इलेक्टोरल बॉण्ड घोटाला, विद्युत वितरण अनुबन्ध में अडानी को मालामाल करने जैसे दर्जनों घोटालों से इनका असली चाल-चेहरा-चरित्र लोगों के सामने उजागर होता जा रहा है। ईवीएम में हेरे-फेर करने, एसआईआर के ज़रिये लाखों लोगों का निर्वाचन लिस्ट से नाम कटवाने के बावजूद फ़ासिस्ट सत्ता में बरक़रार रहने को लेकर बहुत निश्चिन्त नहीं हो पा रहे हैं। इसलिए साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की राजनीति को तेज़ करना फ़ासिस्टों के लिए ज़रूरी हो गया है।

भाजपा की साम्प्रदायिक राजनीति का जवाब तभी दिया जा सकता है, जब इनकी मेहनतकश-विरोधी नीतियों का बहुत निरन्तरता के साथ आम आबादी में चौतरफ़ा भण्डाफोड़ अभियान संगठित किया जाये। आम मेहनतकश हिन्दू आबादी को यह बात समझनी ही होगी कि फ़ासीवादी भाजपा का उनके हितों से कुछ लेना-देना नहीं है। फ़ासीवादी भाजपा केवल मुट्ठी-भर पूँजीपतियों की सेवक है फिर वो किसी भी जाति-धर्म-क्षेत्र के हों। हिन्दू मेहनतकश जनता के दुश्मन मुस्लिम मेहनतकश जनता नहीं है बल्कि हिन्दू-मुस्लिम और अन्य किसी भी धर्म को मानने वाली मेहनतकश जनता के साझा दुश्मन फ़ासीवादी भाजपा सरकार और पूँजीवादी व्यवस्था है। इसलिए फ़ासीवादी भाजपा और पूँजीवादी व्यवस्था के ख़िलाफ़ आम जनता की क्रान्तिकारी एकजुटता ही वास्तविक समाधान है। आम जनता के बीच सच्ची धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों को संस्थाबद्ध तरीक़े से पैठाना बहुत अहम कार्यभार है।

फ़ासिस्टों की हिन्दुत्ववादी साम्प्रदायिक राजनीति के ख़िलाफ़ लड़ते हुए हमें यह बात भी नहीं भूलनी चाहिए कि इसका वास्तविक जवाब साम्प्रदायिक राजनीति के फ्रेमवर्क में या नकली धर्मनिरपेक्षता पर अमल करने वाली चुनावबाज़ पार्टियों को रहनुमा बनाकर नहीं दिया जा सकता। मुस्लिमों के धार्मिक विश्वास की स्वतन्त्रता के जनवादी अधिकार के लिए और मुस्लिमों पर फ़ासिस्टों के हमले के ख़िलाफ़ लड़ते हुए हमें यह बात कत्तई नहीं भूलनी चाहिए कि मुस्लिमों के सच्चे रहनुमा ओवैसी या कोई भी मुस्लिम कट्टरपंथी संगठन नहीं हो सकते। क्योंकि साम्प्रदायिकता की राजनीति का जवाब साम्प्रदायिकता की राजनीति नहीं है। उल्टे इससे फ़ासीवादी शक्तियाँ अपनी साम्प्रदायिक राजनीति की बहुसंख्यक हिन्दू आबादी में वैधता हासिल करती हैं। हिन्दुत्ववादी साम्प्रदायिक फ़ासीवादी राजनीति का सही जवाब फ़ासिस्टों के पूँजीपरस्त चेहरे को बेनक़ाब करने और पूँजीवाद-विरोधी सच्ची धर्मनिपेक्षता के उसूलों पर आधारित क्रान्तिकारी राजनीति है। जिस तरह से आज़ादी की लड़ाई में रामप्रसाद बिस्मिल और अशफ़ाक़उल्ला खान अंग्रेज़ों की ‘फूट डालो-राज करो’ की नीति के ख़िलाफ़ एकजुट होकर लड़े, उसी तरह इन फ़ासीवादी ताक़तों के ख़िलाफ़ भी हमें वर्गीय आधार पर एकजुट होकर लड़ने की ज़रूरत है।

शहीद-ए-आज़म भगतसिंह के शब्दों में कहें तो - **“लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की ज़रूरत है। ग़रीब, मेहनतकशों व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं। इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी ग़रीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताक़त अपने हाथों में लेने का प्रयत्न करो। इन यत्नों से तुम्हारा नुक़सान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी ज़ंजीरे कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी।”**

“जब तक लोग अपनी स्वतंत्रता का इस्तेमाल करने की ज़हमत नहीं उठायेंगे, तब तक तानाशाहों का राज चलता रहेगा; क्योंकि तानाशाह सक्रिय और जोशीले होते हैं, और वे नींद में डूबे हुए लोगों को ज़ंजीरों में जकड़ने के लिए, ईश्वर, धर्म या किसी भी दूसरी चीज़ का सहारा लेने में नहीं हिचकेंगे।”

– फ्रांसीसी क्रान्ति की वैचारिक नींव तैयार करने वाले महान दार्शनिकों में से एक, वोल्तेयर

दुनिया की सबसे त्रासदीपूर्ण-अमानवीय जीवन स्थितियों में रहने वाली शरणार्थी आबादी के ख़िलाफ़ दुनिया के दक्षिणपन्थी शासकों का सबसे क्रूर व्यवहार

● अपूर्व मालवीय

2 सितम्बर 2015 को तुर्की के बोडरम समुद्र तट पर तीन साल का सीरियाई बच्चा आयलान कुर्दी लाल टी-शर्ट और नीली निक्कर में औंधे मुँह समुद्र तट पर मृत पड़ा था। यह फोटो तुर्की की पत्रकार नीलूफ़र ने खींची थी और कुछ ही घण्टों में यह तस्वीर दुनियाभर की मीडिया, सोशल मीडिया और अन्तरराष्ट्रीय मंचों पर वायरल हो गयी। इस तस्वीर ने पूरी दुनिया को झकझोर दिया था। यह कुर्द परिवार मूल रूप से सीरिया के कोबानी शहर का निवासी था जो ISIS और कुर्द लड़ाकों के बीच युद्ध से तबाह हो गया था। यह परिवार तुर्की से ग्रीस (यूरोपीय यूनियन) के लिए एक छोटी-सी रबर बोट से निकला था। नाव में 12 शरणार्थी थे। नाव डगमगा गयी और समुद्र में पलट गयी। जिसमें आयलान, उसकी माँ और पाँच साल के भाई ग़ालिब की मौत हो गयी। सिर्फ़ आयलान के पिता ही जीवित बचे। बाद में उन्होंने कहा था कि "मेरे बच्चे मेरी हाथों से फिसल गये... मैं उन्हें बचा नहीं सका।" आयलान कुर्दी की तस्वीर दुनियाभर के शरणार्थी संकट का प्रतीक बन गयी। आयलान कुर्दी की मौत ने दुनिया को यह दिखाया कि शरणार्थी संकट केवल आँकड़े नहीं, इन्सानों की ज़िन्दगियाँ हैं।

आज पूरी दुनिया में शरणार्थियों की स्थिति अत्यन्त गम्भीर और जटिल है। इस स्थिति को और भी गम्भीर, अमानवीय व त्रासदीपूर्ण बनाने में दुनियाभर के दक्षिणपन्थी और फ़ासीवादी विचारधारा वाले शासकों की बहुत बड़ी भूमिका है। ग़ज़्ज़ा ,सीरिया, यमन, सूडान, यूक्रेन, म्यांमार, इथियोपिया आदि देशों में चल रहे युद्ध व गृहयुद्ध से करोड़ों की संख्या में लोगों का विस्थापन हुआ है और वे त्रासदीपूर्ण शरणार्थी जीवन जीने के लिए मजबूर हैं। यूएनएचसीआर (UNHCR – संयुक्त राष्ट्र शरणार्थी उच्चायुक्त) की नवीनतम रिपोर्ट (2024 के अन्त तक के आँकड़े) के अनुसार, दुनिया में जबरन विस्थापित लोगों की संख्या 120 मिलियन (12 करोड़) से अधिक हो चुकी है, जिनमें से लगभग 40 मिलियन (4 करोड़) शरणार्थी हैं।

शरणार्थियों के सन्दर्भ में अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून बने हैं जिनका उद्देश्य उन व्यक्तियों को सुरक्षा प्रदान करना है जो अपने देश में उत्पीड़न, युद्ध या हिंसा के कारण पलायन करने पर विवश होते हैं। यह क़ानून मुख्यतः 1951 की "शरणार्थी संधि" और 1967 के प्रोटोकॉल पर आधारित है। इसके अनुसार किसी शरणार्थी को उस देश में जबरन वापस नहीं भेजा जा सकता जहाँ उसकी जान या स्वतन्त्रता को ख़तरा हो। साथ ही शरणार्थियों को आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार और न्यायिक सुरक्षा का अधिकार भी हासिल है। लेकिन आज दुनियाभर के तमाम दक्षिणपन्थी और फ़ासीवादी शासकों के लिए इन क़ानूनों का कोई महत्त्व नहीं है। ये अपने राजनीतिक हितों के लिए लाखों की आबादी को नारकीय हालात में मरने के लिए छोड़ सकते हैं। इसमें अब मोदी के सत्ता में आने के बाद भारत का नाम भी जुड़ गया है।

रोहिंग्या शरणार्थियों का मामला

यूनाइटेड नेशन ने इन्हें "दुनिया का सबसे प्रताड़ित अल्पसंख्यक समुदाय" माना है। ग़ज़्ज़ा की तरह रोहिंग्या शरणार्थियों का मामला भी आज के समय का एक सबसे संवेदनशील और गम्भीर मानवाधिकार संकट है। रोहिंग्या मूलतः म्यांमार (बर्मा) के रखाइन प्रांत में रहने वाला एक मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदाय है, जिन्हें म्यांमार की सरकार नागरिक नहीं मानती और उन्हें दशकों से व्यवस्थित भेदभाव, हिंसा और विस्थापन का सामना करना पड़ा है। 1982 में म्यांमार में बने नागरिकता क़ानून के तहत रोहिंग्या समुदाय को म्यांमार का नागरिक नहीं माना गया। उन्हें "अवैध बांग्लादेशी" कहा गया, जबकि वे पीढ़ियों से म्यांमार में रह रहे थे। रोहिंग्या लोगों पर शादी, यात्रा, शिक्षा, रोज़गार, धार्मिक क्रियाकलाप और चिकित्सा सेवाओं पर प्रतिबन्ध लगाये गये। उन्हें म्यांमार में जबरन मज़दूरी, बलात्कार, आगजनी, और हत्या जैसे अत्याचार झेलने पड़े हैं। अगस्त 2017 में म्यांमार सेना ने "क्लियरेंस ऑपरेशन" चलाया, जिसे मानवाधिकार संगठनों ने जातीय सफ़ाया कहा। क़रीब 7 लाख से अधिक रोहिंग्या सीमा पार कर बांग्लादेश भागे। इनमें अधिकतर महिलाएँ, बच्चे और बुज़ुर्ग थे। वर्तमान में 10 लाख से अधिक रोहिंग्या शरणार्थी अब भी बांग्लादेश के मुख्यतः कॉक्सबाजार और बाशन चार के शरणार्थी शिविरों में बेहद अमानवीय स्थितियों में रहने को मजबूर हैं।

भारत में लगभग 40,000 रोहिंग्या शरणार्थी दिल्ली, जम्मू, हैदराबाद, और हरियाणा के मेवात में हैं। कई राज्यों में उनके पास यूएनएचसीआर कार्ड हैं, लेकिन नागरिकता, राशन, शिक्षा, रोज़गार आदि सुविधाओं से वंचित हैं। इनकी वापसी की प्रक्रिया ठप है क्योंकि म्यांमार अब भी उन्हें नागरिकता देने या सुरक्षा की गारण्टी देने को तैयार नहीं है। वहीं दूसरी तरफ़ मोदी सरकार ने कई बार रोहिंग्या को "सुरक्षा ख़तरा" मानते हुए उन्हें जबरन वापस भेजने की कोशिश की है। यह जानते हुए भी कि बांग्लादेश उन्हें स्वीकार नहीं करेगा और म्यांमार में वे जीवित नहीं रह पायेंगे। मोदी सरकार एक ऐसी आबादी को "सुरक्षा ख़तरा" बता रही है जो अपनी बुनियादी जरूरतों तक से महरूम है! जिसे शिक्षा- स्वास्थ्य तो क्या दो वक़्त के भोजन तक न मिलने का संकट है!

दुनिया के कुछ फ़ासीवादी और दक्षिणपन्थी शासकों का शरणार्थियों के प्रति रवैय्या

शरणार्थियों के साथ बेहद असंवेदनशीलता से पेश आने वाले दुनिया के और भी देश हैं। सबसे ज़रूरी और सामान्य बात इसमें यह है कि इन सभी देशों के शासक धुर दक्षिणपन्थी और अति राष्ट्रवादी विचारों वाले हैं। हंगरी के विक्टर ओर्बान, जिनकी विचारधारा उग्र राष्ट्रवादी, यूरो-विरोधी, इस्लाम-विरोधी है, ने 2015 में सीरिया संकट के दौरान, हंगरी में बाड़ लगा दी ताकि शरणार्थी न घुस सकें। इन्होंने शरणार्थियों को "आक्रमणकारी" कह कर प्रचार किया और यूरोपीय संघ की शरणार्थी पुनर्वास योजना का तीखा विरोध किया। हंगरी में शरणार्थियों को लगभग कोई क़ानूनी या सामाजिक सुरक्षा हासिल नहीं है। पोलैण्ड में पीस पार्टी – कैथोलिक राष्ट्रवाद की हिमायती है। इसने पश्चिमी एशिया के और अफ्रीकी शरणार्थियों को प्रवेश न देने की नीति बना रखी है। 2021 में बेलारूस-पोलैण्ड सीमा पर शरणार्थियों को कँटीली बाड़ों के पीछे भूखा-प्यासा छोड़ दिया गया था। इटली में जियोर्जिया मेलोनी की ब्रदर्स ऑफ इटली पार्टी है, जिसकी विचारधारा राष्ट्रवादी फासीवादी है, ने भूमध्य सागर से आने वाले शरणार्थियों के जहाज़ों को बंदरगाहों में प्रवेश देने से मना कर दिया। यहाँ तक कि शरणार्थियों के बचाव के लिए चलाये जाने वाले विभिन्न अन्तरराष्ट्रीय एनजीओ के बचाव अभियानों को अवैध घोषित कर दिया। इटली में अफ्रीका और पश्चिम एशिया से आने वाले प्रवासी जहाज़ों को जबरन वापस लौटाया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में डोनाल्ड ट्रंप शासनकाल के दौरान मेक्सिको सीमा पर दीवार बनायी जाती है। "ज़ीरो टॉलरेंस" नीति, के तहत बच्चों को उनके माता-पिता से अलग कर हिरासत में लिया गया। हाल ही में कई मुस्लिम बहुल देशों के लोगों पर अमेरिका में प्रवेश पर प्रतिबन्ध ("मुस्लिम बैन") लगाया गया है। तुर्की में रेसेप तैय्यप एर्दोआन की सत्ता है जो इस्लामिक दक्षिणपन्थी है। तुर्की में सबसे ज़्यादा सीरियाई शरणार्थी (34 लाख) हैं, लेकिन हाल के वर्षों में शरणार्थियों के प्रति सामाजिक असन्तोष और नस्लीय हमलों में वृद्धि हुई है। कई बार सीमा सील कर दी जाती है, और लौटाये जाने की धमकी दी जाती है। शरणार्थियों का राजनीतिक सौदेबाज़ी के रूप में उपयोग (यूरोपीय यूनियन से पैसा लेने के लिए) किया जाता है। इसके अलावा ग़ज़्ज़ा में इज़राइल की नेतन्याहू सरकार की बर्बरता आज पूरी दुनिया देख रही है।

फ़ासीवादी और दक्षिणपन्थी शासकों ने अपनी नीतियों से कई मानवीय त्रासदियों, उत्पीड़न-दमन, दंगों और सामूहिक क़त्लेआमों को जन्म दिया है। साथ ही इन सत्ताओं ने सबसे भयंकर स्थितियों में अपने जगह-ज़मीन से उजड़कर रहने वाली, बुनियादी मानवीय सुविधाओं तक से वंचित शरणार्थी आबादी के ख़िलाफ़ सबसे कठोर और बर्बर व्यवहार किया है। ये सत्ताएँ मनुष्यता के अस्तित्व और मानवीय संवेदनशीलता के लिए सबसे बड़ा ख़तरा हैं।

दुर्गावती वोहरा (दुर्गा भाभी): भारत की क्रान्तिकारी विरासत में चमकता हुआ एक नाम

● अंजलि

आज सत्तासीन फ़ासीवादी शक्तियों द्वारा इतिहास के विकृतिकरण को अभूतपूर्व गति से अंजाम दिया जा रहा है। एक ओर जहाँ जनता के क्रान्तिकारी नायकों की विरासत पर लगातार धूल और राख डाली जा रही है, वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के दौरान जिनका इतिहास माफ़ी माँगने, मुख़बिरी करने और ग़द्दारी का है, उन्हें नायक बनाने की कुत्सित कोशिश की जा रही है।

भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन के शानदार इतिहास में एक नाम दुर्गावती वोहरा का है, जिनकी विरासत को फ़ासिस्टों द्वारा जानबूझकर छिपाया जा रहा है। क्रान्तिकारी दुर्गावती वोहरा को क्रान्तिकारियों के जत्थे द्वारा दुर्गा भाभी ही बुलाया जाता था क्योंकि वे "भगवती भाई" यानी क्रान्तिकारी भगवतीचरण वोहरा की पत्नी थीं।

दुर्गा भाभी का जन्म 7 अक्टूबर 1907 शहज़ादपुर, इलाहाबाद में हुआ था। इनका विवाह भगवती चरण वोहरा से हुआ था, जो 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन' (एचएसआरए) के सदस्य थे। भगवतीचरण वोहरा के ज़रिये ही दुर्गावती क्रान्तिकारी कामों में सक्रिय हुई थीं। इस दौरान उन्होंने बम बनाने से लेकर बन्दूक चलाना तक सीखा।

जेल में क्रान्तिकारियों को जो कपड़े भेजे जाते थे, दुर्गा भाभी उनकी तुरपन खोलकर उनमें कोडवर्ड में सन्देश लिखकर भेजती थीं।

साइमन कमीशन का विरोध करते हुए लाठी चार्ज में लाला लाजपत राय की मृत्यु हो गयी। 10 दिसम्बर 1928 को लाहौर में क्रान्तिकारियों की एक बैठक बुलायी गयी जिसकी अध्यक्षता दुर्गा भाभी ने की। इसमें जयगोपाल, भगतसिंह, राजगुरु और चन्द्रशेखर

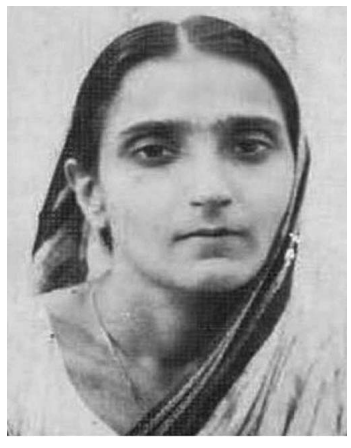

आज़ाद आदि शामिल हुए थे। इन चारों क्रान्तिकारियों को लाहौर के पुलिस सुपरिटेंडेंट स्कॉट की हत्या की ज़िम्मेदारी दी गयी। इस घटना में अंग्रेज़ अधिकारी साण्डर्स को मारकर लाजपत राय की मौत का बदला लिया गया।

इस घटना के बाद पूरे लाहौर में चप्पे-चप्पे पर पुलिस की नाकेबन्दी कर दी गयी थी, जिसमें भगतसिंह और राजगुरु को लाहौर से बाहर निकालने में दुर्गा भाभी ने अपनी और अपने 3 साल के बच्चे शची की जान जोखिम में डालकर मदद की थी। दुर्गा भाभी भगतसिंह की पत्नी बनकर अपने बेटे शची के साथ लाहौर से बंगाल गयी थीं जिसमें राजगुरु अर्दली के भेष में थे। इस यात्रा के लिए भगतसिंह का नाम रंजीत और दुर्गा भाभी का नाम सुजाता रखा गया था। इस यात्रा के ज़रिये ही भगत सिंह और राजगुरु को लाहौर से सफलतापूर्वक बाहर निकाला जा सका। इस रूप में अपने देश के क्रान्तिकारी आन्दोलन में दुर्गावती ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

एक साक्षात्कार के दौरान दुर्गा भाभी ने कहा था कि "औरतें आँसू बहाने के लिए नहीं बनीं, अगर ज़रूरत पड़ी तो मैं फिर बन्दूक उठाऊँगी।"(नवभारत टाइम्स, 1975, स्वतन्त्रता दिवस विशेषांक)

इस बात को दुर्गा भाभी ने अपने जीवन में लागू भी किया। सन 1930 में चन्द्रशेखर आज़ाद द्वारा क्रान्तिकारी गतिविधियों के मद्देनज़र पंजाब के पूर्व गवर्नर जनरल और युनाइटेड प्रॉविन्स के तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम हेली की हत्या करने के लिए दुर्गावती, विश्वनाथ वैशम्पायन और सुखदेव को बम्बई भेजा गया था। ऐन वक़्त पर हेली का कार्यक्रम बदल गया लेकिन लेमिंगटन रोड पुलिस स्टेशन के बाहर क्रान्तिकारियों के हमले में अंग्रेज़ पुलिस सार्जेंट टेलर और उसकी पत्नी को गोली लगी। दुर्गावती वहाँ से बहुत होशियारी से निकल गयीं।

दुर्गा भाभी इस बात की प्रतीक हैं कि राष्ट्रीय आन्दोलन में केवल पुरुष ही नहीं स्त्रियाँ भी बराबरी से लड़ रही थीं। वे राष्ट्रीय आन्दोलन में स्त्रियों की भागीदारी का प्रतिनिधित्व करती हैं

(पेज 2 पर जारी)

आरएसएस के 100 साल - संघ की सच्चाई और देश के मेहनतकशों से ग़द्दारी की दास्तान

(पेज 1 से आगे)

पास गये थे। इस शिष्टमंडल ने डॉक्टर जी से अनुरोध किया कि आन्दोलन से स्वातन्त्र्य मिल जायेगा और संघ को पीछे नहीं रहना चाहिए। उस समय एक सज्जन ने जब डॉक्टर जी से कहा कि वह जेल जाने के लिए तैयार हैं तो डॉक्टर जी ने कहा – ज़रूर जाओ लेकिन पीछे आपके परिवार को कौन चलायेंगे? उस सज्जन ने बताया 2 साल तक केवल परिवार चलाने के लिए नहीं आवश्यकता अनुसार जुर्माना भरने की भी पर्याप्त व्यवस्था उन्होंने कर रखी है तो डॉक्टर जी ने कहा आपने पूरी व्यवस्था कर रखी है तो अब 2 साल के लिए संघ का ही कार्य करने के लिए निकलें। घर जाने के बाद वह सज्जन न जेल गये न संघ का कार्य करने के लिए बाहर निकले।"

(श्री गुरु जी समग्र दर्शन, खण्ड 4 पृष्ठ 39- 40, भारतीय विचार साधना, नागपुर 1981)

2. "1942 में भी अनेकों के मन में तीव्र आन्दोलन था। उस समय भी संघ का नित्य कार्य चलता रहा। प्रत्यक्ष रूप से संघ ने कुछ न करने का संकल्प किया, परन्तु संघ के स्वयंसेवकों के मन में उथल-पुथल चल रही थी। संघ अकर्मण्य लोगों की संस्था है। इनकी बातों में कुछ अर्थ नहीं। ऐसा केवल बाहर के लोगों ने नहीं कहा, अपने स्वयंसेवकों ने भी कहा। वह बड़े रुष्ट हुए।"

(श्री गुरु जी,समग्र दर्शन खण्ड 4, पृष्ठ - 40, भारतीय विचार साधना, नागपुर, 1981)

आज़ादी के आन्दोलन में भाग न लेने के साथ-साथ हमारे शहीदों की क़ुर्बानी का भी संघ ने मज़ाक उड़ाया है। भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव, अशफ़ाकउल्ला खाँ, रामप्रसाद बिस्मिल की क़ुर्बानी जहाँ देश के हर व्यक्ति के लिए देशभक्ति का एक आदर्श है, उसके बारे में गोलवलकर के विचार निम्नलिखित थे –

1. "हमारी भारतीय संस्कृति को छोड़कर अन्य सब संस्कृतियों ने ऐसे बलिदान की उपासना की है तथा उसे आदर्श माना है और ऐसे सब बलिदानों को राष्ट्र नायक के रूप में स्वीकार किया है। परन्तु हमने भारतीय परम्परा में इस प्रकार के बलिदान को सर्वोच्च आदर्श नहीं माना।" (गोलवलकर, विचार नवनीत, पृष्ठ 280- 281)

2. "निस्सन्देह ऐसे व्यक्ति जो अपने आप को बलिदान कर देते हैं श्रेष्ठ व्यक्ति हैं और उनका जीवन दर्शन पौरुषपूर्ण है। सर्वसाधारण व्यक्तियों से जो चुपचाप भाग्य के आगे समर्पण कर देते हैं और भयभीत और अकर्मण्य बने रहते हैं, बहुत ऊँचे हैं। फिर भी हमने ऐसे व्यक्तियों को समाज के सामने आदर्श के रूप में नहीं रखा है। हमने बलिदान को महानता का सर्वोच्च बिन्दु जिसकी मनुष्य आकांक्षा करें नहीं माना क्योंकि वह अन्ततः अपना उद्देश्य प्राप्त करने में असफल हुए और असफलता का अर्थ है कि उनमें कोई गम्भीर त्रुटि थी।" (एमएस गोलवलकर, विचार नवनीत, जयपुर 1988 पृष्ठ 281)

इसके साथ ही 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में संघ के प्रमुख आदर्श पुरूषों में से एक अटल बिहारी वाजपेयी ने तो क्रान्तिकारियों के ख़िलाफ़ मुखबिरी तक कर डाली थी। आज़ादी की लड़ाई में भाग न लेने, माफ़ीनामे लिखने, मुखबिरी करने के अपने इतिहास के साथ-साथ संघ के नाम एक और कारनामा जुड़ा हुआ है वह है देश के विभाजन में संघ की भूमिका। जिस द्वि-राष्ट्र सिद्धांत के लिए जिन्ना और मुस्लिम लीग को ज़िम्मेदार ठहराया जाता है, उसकी हिमायत हिन्दू महासभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने हमेशा ही की थी। उनके नेता श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने स्वयं मुखर शब्दों में दो-राष्ट्र सिद्धान्त का समर्थन किया था और अन्य कई नेताओं ने भी ऐसा ही किया था। इसके साथ ही संघ का ब्रिटिश शासकों, जर्मनी के नाज़ियों, इटली के फ़ासीवादियों से सम्बन्ध काफ़ी मधुर थे। संघ की स्थापना में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले व्यक्ति मुंजे ने इटली में मुसोलिनी से मुलाक़ात की और उसके फ़ासीवादी संगठन से काफ़ी प्रभावित हुए। भारत में भी उसी आधार पर एक संगठन निर्माण की योजना बनायी। संघ की वर्दी से लेकर पूरी की पूरी विचारधारा इटली के फ़ासीवादियों से ली हुई है। संघ के फलने-फूलने में अंग्रेज़ों ने भी काफ़ी मदद पहुँचाई।

इतना ही नहीं हिटलर द्वारा जर्मनी में यहूदियों के क़त्लेआम को पूरी दुनिया बार-बार अपराध मानती है लेकिन संघ ने खुले तौर पर उसकी प्रशंसा की है। इसके साथ ही वे भारत में अल्पसंख्यकों के साथ वही बर्ताव करने की वक़ालत भी करते हैं। आज़ादी की लड़ाई में संघ की भूमिका संघ के लिए वह काला अध्याय है जिसे साफ़ करने के लिए आज फ़ासीवादी मोदी सरकार लगातार पाठ्यक्रमों में बदलाव कर रही है। इतिहास का मिथ्याकरण और विकृतिकरण किया जा रहा है। मिथकों को इतिहास बनाया जा रहा है। हालाँकि तमाम कोशिशों के बावजूद संघ अपने काले इतिहास को नहीं मिटा सकता है।

संघ ख़ुद को हिन्दू संस्कृति का रक्षक बताता है। इसके साथ ही वह मनुस्मृति को जायज़ भी ठहराता है। हमें इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि मनुस्मृति उन पुस्तकों में प्रमुख है जिनमें ब्राह्मणवाद को वैधता प्रदान की गयी है। इसके साथ ही दलितों व स्त्रियों के संबंध में उक्त पुस्तक में बहुत ही आपत्तिजनक बातें लिखी गयी है। शूद्रों व दलितों के लिए ऊपर के तीन वर्णों की सेवा करना ही प्रमुख काम बताया गया है तथा कोई शूद्र द्विज का कठोर वाणी से अपमान करे तो उसकी जीभ काट लेने की बात कही गयी है। स्त्रियों के सम्बन्ध में पुरुषों पर स्त्रियों की निर्भरता तथा कई तरह की पाबंदियों की बात को जायज़ ठहराया गया है। इतना ही नहीं भारत जैसे वैविध्यपूर्ण देश में "एक हिन्दू संस्कृति" की बात करने वाले संघ की असलियत यह है कि उनकी संस्कृति है साम्प्रदायिकता फैलाना, दंगे करना और फूट डालना। जैसा कि प्रेमचन्द ने कहा है – "साम्प्रदायिकता हमेशा संस्कृति का खोल ओढ़ कर आती है।" संघ भी यही काम करता है।

आज़ादी के बाद गाँधी हत्या, बाबरी मस्जिद विध्वंस, रथ यात्रा, गुजरात दंगे, मुज़फ़्फ़रनगर दंगे, मालेगाँव बम काण्ड, समझौता एक्सप्रेस में हुए विस्फोट, अजमेर शरीफ़ दरगाह काण्ड, दिल्ली में जामा मस्जिद काण्ड आदि में संघ के लोगों को लिप्त पाया गया। गुजरात में 2002 में हुए मुसलमान के नरसंहार के स्टिंग ऑपरेशन को तहलका ने 2007 में सबके सामने रखा जिसके द्वारा इस नरसंहार में यह सच्चाई सामने आयी कि विश्व हिन्दू परिषद और बजरंग दल ने सक्रियता के साथ इस घटना को अंजाम दिया था। इन सभी मसलों में या तो कार्रवाई ही नहीं हुई, या उचित और उपयुक्त कार्रवाई नहीं हुई।

2014 के बाद से तो पूरे देश में इनकी असलियत और नंगे रूप में सामने आ चुकी है। मॉब लिंचिंग से लेकर "लव-जिहाद", "लैंड-जिहाद", "मुस्लिम आतंकवाद" का झूठे प्रचार और मन्दिर-मस्जिद, हिन्दू-मुसलमान, हिजाब विवाद आदि नकली मुद्दों पर संघ लोगों को उलझा कर रखने का काम करता है। धार्मिक जुलूस के मौके पर दंगे करवाना और साम्प्रदायिकता फैलाने के कई उदाहरण सामने आ चुके हैं। इनका असली चाल, चेहरा और चरित्र तब और खुलकर सामने आ जाता है जब संघ परिवार के लोग बलात्कारियों को संरक्षण देते हैं तथा उनके समर्थन में तिरंगा यात्रा निकालते हैं। इतना ही नहीं गुजरात नरसंहार के हत्यारों और बलात्कारियों का संघ परिवार के लोग फूल-मालाओं के साथ स्वागत करते हैं। संघ का छात्र संगठन एबीवीपी के लोग दिल्ली विश्वविद्यालय में शिक्षकों को खुलेआम थप्पड़ मारते हुए तथा अन्य जगहों पर लड़कियों के अश्लील वीडियो बनाते हुए दिखते हैं। बीएचयू में लड़कियों के साथ बलात्कार जैसे मामलों में संघ के लोग लिप्त पाए गये हैं।

आरएसएस के 100 साल के इतिहास के कुछ उद्धरणों को हमने देखा है इसके साथ ही कुछ सवाल भी हमें पूछने चाहिए जिससे उनकी असलियत और बेहतर तरीक़े से हमें समझ में आये जैसे कि - संघ दुनिया का सबसे बड़ा संगठन होने का दावा करता है लेकिन क्या लॉकडाउन के समय पैदल लौट रहे मजदूरों की संघ ने कोई मदद की? देश में बढ़ती महँगाई, बढ़ती बेरोज़गारी तथा ग़रीबी ख़त्म करने के लिए क्या संघ ने कोई आन्दोलन खड़ा किया है? इन सभी सवालों का उत्तर है नहीं।

इसकी वजह साफ़ है कि संघ एक फ़ासीवादी संगठन है जिसका मूल उद्देश्य होता है बड़ी पूँजी की सेवा करना तथा जनता के संगठित प्रतिरोध को तोड़ना। 1925 से अब तक संघ ने केवल यही काम प्रतिबद्धता के साथ किया है। इनके "हिन्दू राष्ट्र" के जुमले में भी हमें नहीं फँसना चाहिए क्योंकि इनका "हिन्दू राष्ट्र" भी अम्बानी-अदानी जैसे धन्नासेठों का "राष्ट्र" है, जिसमें आम ग़रीब मेहनतकशों का काम बस इनकी जमात के मुनाफ़े के लिए खटना है, चाहे वे हिन्दू हों, मुसलमान हों, या कोई और। आम मेहनतकश ग़रीब हिंदू के भी यह सगे नहीं है। अगर ऐसा होता तो आये दिन दिल्ली, नोएडा ,बम्बई, गुजरात से लेकर आन्ध्र, तेलंगाना, बंगाल आदि की फैक्ट्रियों में जब मज़दूर अपने हक़-अधिकारों के लिए लड़ते हैं तब ये उस संघर्ष में शामिल होने ज़रूर आते। लेकिन संघ ऐसा नहीं करता है। उल्टे वह तो मज़दूरों के संघर्षों को कैसे तोड़ा जाय, कैसे दबाया जाय, इसमें पूँजीपति वर्ग की सहायता करने का काम करता है! इसके साथ ही संघ छात्र-विरोधी, दलित-विरोधी और आदिवासी-विरोधी घटनाओं पर भी न केवल चुप्पी साधे रहता है, बल्कि ख़ुद ऐसी घटनाओं को अंजाम देता और दिलावाता है।

हमने बस कुछ चुनिन्दा घटनाओं का ही ज़िक्र किया है। लेकिन इनकी असलियत को समझने के लिए यह भी पर्याप्त है। हर मेहनतकश के लिए ज़रूरी है वह इनके चाल-चेहरा-चरित्र को पहचाने और इनको अपने सबसे बड़े और सबसे ख़तरनाक दुश्मन के तौर पर पहचाने।

धार्मिक बँटवारे की साज़िशों को नाकाम करो! पूँजीवादी लूट के ख़िलाफ़ एकता क़ायम करो!

"प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ वर्ग हर जगह धार्मिक झगड़ों को उभाड़ने के दुष्कृत्यों में संलग्न रहा है, और वह रूस में भी ऐसा करने जा रहा है—इसमें उसका उद्देश्य आम जनता का ध्यान वास्तविक महत्व की और बुनियादी आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं से हटाना है जिन्हें अब समस्त रूस का सर्वहारा वर्ग क्रान्तिकारी संघर्ष में एकजुट हो कर व्यावहारिक रूप से हल कर रहा है। सर्वहारा की शक्तियों को बाँटने की यह प्रतिक्रियावादी नीति, जो आज ब्लैक हंड्रेड (राजतंत्र समर्थक गिरोहों) द्वारा किये हत्याकाण्डों में मुख्य रूप से प्रकट हुई है, भविष्य में और परिष्कृत रूप ग्रहण कर सकती है। हम इसका विरोध हर हालत में शान्तिपूर्वक, अडिगता और धैर्य के साथ सर्वहारा एकजुटता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की शिक्षा द्वारा करेंगे—एक ऐसी शिक्षा द्वारा करेंगे जिसमें किसी भी प्रकार के महत्वहीन मतभेदों के लिए कोई स्थान नहीं है। क्रान्तिकारी सर्वहारा, जहाँ तक राज्य का सम्बन्ध है, धर्म को वास्तव में एक व्यक्तिगत मामला बनाने में सफल होगा। और सर्वहारा वर्ग इस राजनीतिक प्रणाली में, जिसमें मध्यकालीन सड़न साफ़ हो चुकी होगी, आर्थिक ग़ुलामी के उन्मूलन के लिए व्यापक और खुला संघर्ष चलायेगा जो कि मानव जाति के धार्मिक शोषण का वास्तविक स्रोत है।"

— **लेनिन** (समाजवाद और धर्म)

एसआईआर के फ़र्जीवाड़े से लाखों प्रवासी मज़दूरों, मेहनतकशों, स्त्रियों, अल्पसंख्यकों के मताधिकार के हनन के बीच बिहार विधानसभा चुनाव

जनता के सामने क्या है विकल्प?

(पेज 1 से आगे)

वोटर सूची का संशोधन होता है। उसके लिए एसआईआर आयोजित करवाये जाते हैं। ऐसा एसआईआर सरकार ने 2003 में भी आयोजित किया था। उस समय इस बाबत एक दिशा-निर्देश जारी किये गये थे और यह तय किया गया था कि इस प्रक्रिया को आयोजित करने में चुनाव आयोग के कर्तव्य और अधिकार क्या हैं। इस बार हुए एसआईआर में उन सभी दिशा-निर्देशों का उल्लंघन करते हुए केचुआ ने भाजपा के इशारे पर लाखों वोटरों के नाम सूची से काट दिये हैं। इनमें अधिकांश प्रवासी मज़दूर, औरतें, दलित और मुसलमान हैं। यह प्रक्रिया इसी साल 25 जून से शुरू हुई थी। इस बार के एसआईआर के बारे में कुछ बुनियादी बातों को जान लिया जाय तो मोदी-शाह की साज़िश स्पष्ट हो जाती है।

पहली बात यह है कि पहले होने वाले वोटर सूची संशोधन में केचुआ को वोटरों की वैधता की जाँच व सत्यापन करना होता था। लेकिन इस बार यह ज़िम्मेदारी ख़ुद वोटरों पर ही डाल दी गयी। इस बार उन्हें एक फ़ॉर्म भरना था और 11 में से कोई एक दस्तावेज़ पेश करना था ताकि वे अपने आपको वैध वोटर सिद्ध कर सकें। एक ऐसे राज्य में जहाँ निरक्षरता की दर देश के सभी राज्यों में से सबसे ज़्यादा निरक्षरता दरों में से एक है और जहाँ व्यापक मेहनतकश आबादी के पास पहचान पत्र हैं ही नहीं, वहाँ ऐसी प्रक्रिया का क्या हो सकता था, यह अच्छी तरह से समझा जा सकता है। इन दस्तावेज़ों में शुरुआत में आधार कार्ड को शामिल नहीं किया गया था, जिस पर विपक्षी दलों और नागरिक समाज के संगठनों ने काफ़ी हल्ला मचाया, सुप्रीम कोर्ट में याचिकाएँ दायर कीं जिसके बाद काफ़ी देर से सुप्रीम कोर्ट ने मजबूर होकर यह फ़ैसला दिया कि आधार कार्ड को भी इन दस्तावेज़ों में शामिल किया जाय। लेकिन तब तक काफ़ी देर हो चुकी थी और इसके कारण मताधिकार से वंचित कर दिये गये सभी वोटर अपनी वैधता को सिद्ध नहीं कर सके।

सुप्रीम कोर्ट को भी हस्तक्षेप इसलिए करना पड़ा कि अपनी पहले से ही काफ़ी गिर चुकी इज़्ज़त को बचाना उसके लिए अनिवार्य था। जनता का पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर न्यायपालिका से भरोसा आम तौर पर देर से उठता है और यह व्यवस्था के लिए दूरगामी तौर पर अच्छी बात नहीं होती है। भाजपा की रंगा-बिल्ला की जोड़ी ने पहले ही सभी पूँजीवादी जनवादी संस्थाओं और प्रक्रियाओं का ऐसा कचरा कर दिया है कि जनता उन पर तनिक भी भरोसा नहीं करती। ऐसे में, न्यायपालिका भी अगर पूरी तरह से भरोसा खो बैठेगी तो यह पूँजीवादी शासन के लिए ख़तरनाक बात होगी। इसलिए मजबूर होकर सुप्रीम कोर्ट को काफ़ी देर से यह फ़ैसला देना ही पड़ा। लेकिन इसके बावजूद क़रीब 0.4 करोड़ मतदाताओं के नाम काट दिये गये और अब बिहार में 7.8 करोड़ वोटरों की जगह मात्र 7.4 करोड़ वोटर हैं। आम तौर पर जब वोटर सूची संशोधन होता है तो मतदाताओं की संख्या बढ़ती है क्योंकि जनसंख्या के बढ़ने के साथ यह होना नैसर्गिक है। लेकिन मोदी-शाह राज में उल्टी गंगा बह रही है। भाजपा सरकार और संघ परिवार द्वारा प्रचार यह किया गया है कि यह सारे बंगलादेशी घुसपैठिये मुसलमान थे! यह बात एसआईआर के पूरे होने के बाद सरासर झूठ साबित हुई है, जिसे हम आगे आँकड़ों से देखेंगे।

दूसरी ख़ास बात जिस पर ध्यान दिया जाना चाहिए वह यह है कि एसआईआर के ज़रिये मोदी-शाह जोड़ी ने वास्तव में वह काम करने का प्रयास किया है जो जनता के जुझारू आन्दोलनों के कारण वे देश में राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर (एनआरसी) और नागरिकता संशोधन कानून (सीएए) के ज़रिये नहीं कर पायी थी। वास्तव में, चुनाव आयोग को नागरिकता की वैधता जाँचने, उसे क़ायम रखने या रद्द करने का कोई अधिकार नहीं है। 2003 एसआईआर के दिशा-निर्देश स्पष्ट शब्दों में यह बात कहते हैं कि नागरिकता निर्धारित करने का अधिकार सिर्फ़ गृह मन्त्रालय को है। शाह का गृह मन्त्रालय देशव्यापी जनविरोध के कारण देश के पैमाने पर एनआरसी नहीं करवा सका, तो अब यह काम चोर-दरवाज़े से एसआईआर के ज़रिये करवाया जा रहा है। यही कारण है कि जब सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर करने वाले पक्षों ने 2003 के दिशा-निर्देशों को ज़ाहिर करने की बात की तो केचुआ ने कहा कि उसको वह दिशा-निर्देशों वाली फ़ाइल नहीं मिल रही है! यह भी मोदी-राज की एक ख़ासियत है! वही फ़ाइलें मिलती हैं जिसका फ़ायदा मोदी-शाह उठा सकते हैं! बाक़ी या तो ग़ायब हो जाती हैं, या फिर जल जाती हैं! याचिकाकर्ताओं में से एक एसोसियेशन फॉर डेमोक्रैटिक राइट्स ने ही वे दिशा-निर्देश कोर्ट में पेश कर दिये। लेकिन इसके बावजूद सुप्रीम कोर्ट इस पर कोई स्पष्ट स्टैण्ड लेने के बजाय गोल-मोल बातें करता रहा। अब किसी जज को अपना 'लोया' करवाने का शौक़ तो है नहीं! और इतिहास गवाह है कि जब न्यायाधीश फ़ासीवादी सत्ता की सेवा करते हैं, तो उसका मेवा भी अवश्य ही मिलता है! बहरहाल, मसले का कुछ नहीं हुआ और एसआईआर के दौरान वास्तव में एनआरसी की साज़िश को ही आंशिक तौर पर लागू किया गया जिसका मक़सद है देश में दमित और शोषित जमातों के मताधिकार को छीन लिया जाय। हिटलर ने भी यहूदियों और राजनीतिक विरोधियों के मताधिकार को खुलेआम छीन लिया था। अब फ़र्क इतना है कि यह काम खुलेआम करने के बजाय पर्देदारी में और घुमा-फिराकर किया जाता है। यह आज के फ़ासीवाद की ख़ासियत है। पूँजीवादी जनवाद के खोल को नष्ट नहीं किया जाता, लेकिन उसकी अन्तर्वस्तु को क्रमिक प्रक्रिया में नष्ट किया जाता है।

तीसरी बात जो इस एसआईआर के बारे में ध्यान देने योग्य है कि इसे जून 2025 में, चुनावों से मात्र 4-5 महीने पहले शुरू किया गया और वह भी उस सीज़न में जब प्रवासी मज़दूरों की बड़ी आबादी काम के लिए बिहार से बाहर होती है। इतने कम समय में इतनी अधिक आबादी वाले राज्य में यह काम सुचारू तरीक़े से हो ही नहीं सकता था, यदि उसे उचित रूप में किया जाता। ख़ैर, यह काम ही दमित और शोषित ग़रीब आबादी का मताधिकार छीनने के लिए किया गया था तो इसे उचित रूप से करने का कोई आग्रह या ऐसी कोई मंशा केचुआ की थी भी नहीं!

एसआईआर का नतीजा और "घुसपैठियों" का फर्जी शोर

एसआईआर का नतीजा अब सामने है। क़रीब 0.4 करोड़ मतदाताओं का मताधिकार छीन लिया गया। 81 लाख को शुरू में ही अपना नाम नहीं मिला; 1.38 करोड़ के पते सन्देहास्पद निकले; 2,258 पतों पर 100 से ज़्यादा वोटर रहते थे! अन्त में, 7.8 करोड़ से घटकर बिहार के मतदाताओं की तादाद रह गयी 7.4 करोड़! किन लोगों के नाम काटे गये? आइए देखते हैं। स्त्री वोटरों का हिस्सा कुल वोटरों में 47.7 प्रतिशत से घटकर 47.2 प्रतिशत रह गया। 43 विधानसभा क्षेत्रों में कुल काटे गये नामों में से 60 प्रतिशत से ज़्यादा नाम औरतों के थे। आम तौर पर, ये दलित, ग़रीब पिछड़ी व मुसलमान औरतें थीं। नतीजतन, आज बिहार की मतदाता सूची में लिंग अनुपात घटकर 892 रह गया है, यानी 1000 पुरुष मतदाताओं पर 892 स्त्री मतदाता! बिहार की आबादी का 16.9 प्रतिशत मुसलमान आबादी है। कुल काटे गये नामों का एक-तिहाई मुसलमानों का नाम है, जैसा कि चुनाव विश्लेषक व विशेषज्ञ योगेन्द्र यादव ने बताया। आम तौर पर, जिन विधानसभा क्षेत्रों में मुसलमान मतदाता बड़ी आबादी में या बहुमत में थे, वहाँ पर कटे नामों का अनुपात पूरे राज्य के सभी विधानसभा क्षेत्रों में कटने वाले नामों की संख्या के औसत से कहीं ज़्यादा था। मिसाल के तौर पर, किशनगंज विधानसभा क्षेत्र में 12 प्रतिशत मतदाता ग़ायब हो गये! शिक़ायतों पर सुप्रीम कोर्ट ने क्या कहा? काफ़ी देर से कहा कि आधार कार्ड को साक्ष्य माना जाय और कहा कि 3.7 लाख शिक़ायती मतदाताओं, जिनके नाम काट दिये गये, को मुफ़्त क़ानूनी सहायता दी जाय! वाह! अब इस फोकट सहायता का क्या करेंगे, मताधिकार तो छीन लिया गया!

अमित शाह और नरेन्द्र मोदी दोनों ने खुलकर कहा कि बिहार चुनाव "घुसपैठियों" को भगाने का चुनाव है, एसआईआर के ज़रिये "घुसपैठियों" की पहचान की जायेगी। इन "घुसपैठियों" से मोदी-शाह का मतलब हमेशा बंगलादेशी मुसलमान था। यानी "घुसपैठिया" के नक़ली शोर के पीछे भी भाजपाई फ़ासीवादियों का मक़सद था समाज में साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण को बढ़ावा देना ताकि जनता को असल मसलों से भटकाया जा सके। इसीलिए भाजपाइयों ने विपक्षी दलों को "घुसपैठिया" मुसलमानों का दलाल व हिमायती बताने का बोगस प्रचार करने का पूरा प्रयास किया। वैसे तो नागरिकता निर्धारित करना एसआईआर का काम ही नहीं था क्योंकि 2003 के दिशा-निर्देशों के अनुसार ही एसआईआर में चुनाव आयोग नागरिकता निर्धारित नहीं कर सकता, केवल उम्र या पते की गड़बड़ी के आधार पर नामों की जाँच कर सकता है। जहाँ तक उम्र, पते व अन्य विवरणों की बात है, तो इस मामले में तो इस एसआईआर में गड़बड़ियाँ ही गड़बड़ियाँ निकलीं! यानी जो करना था वह तो किया ही नहीं! बस ग़रीब मेहनतकश दमित आबादी के वोट काट दिये! अमित शाह ने 10 अक्टूबर को झूठ बोला कि बंगलादेशी घुसपैठियों के कारण मुसलमानों की आबादी 24.5 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है जबकि हिन्दू आबादी 4.5 प्रतिशत की रफ़्तार से घट रही है। यह दावा झूठ निकला। वैसे अगर जन्म दर की बात करें तो राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के अनुसार ही मुसलमान आबादी में जन्म-दर 1992 से 2015 के बीच पौने दो गुना कम हो गयी थी।

और एसआईआर के बाद "घुसपैठिये" कितने मिले? भाजपा की झूठ-प्रचार मशीनरी ने फैलाया था कि बिहार के सीमांचल के चार जिले घुसपैठियों से भरे हुए हैं। लेकिन इन चार जिलों में नागरिकता पर मिलने वाली आपत्तियों की कुल संख्या थी मात्र 106, इनमें से भी केवल 40 के नाम ख़ारिज हुए, हालाँकि उसमें भी पर्याप्त धांधली की गयी। इन 40 ख़ारिज मतदाताओं में हिन्दू कितने थे और मुसलमान कितने? हिन्दू थे 25 और मुसलमान थे 15! यानी, "घुसपैठिये" तो मिले नहीं, लेकिन वैध नागरिकों के ही नाम काट दिये गये और मुसलमान आबादी के बढ़ने का हौव्वा फैलाकर हिन्दू आम मेहनतकश आबादी को ही चपेट में ले लिया गया! यही असम के एनआरसी में भी हुआ था जिसमें 19 लाख रद्द नागरिकताओं में 14 लाख हिन्दू निकले थे। इसलिए मेहनतकश हिन्दू आबादी को कम-से-कम अब समझ लेना चाहिए कि एनआरसी, सीएए और अब एसआईआर वास्तव में समूची जनता के ख़िलाफ़ है और जहाँ कहीं मोदी सरकार इसे फिर से करने का प्रयास करे, वहाँ हमें सड़कों पर उतरकर इसका विरोध करना चाहिए। "घुसपैठियों" का नक़ली डर दिखाकर वास्तव में सभी धर्मों व जातियों की आम मेहनतकश जनता को निशाना बनाया जा रहा है। निश्चित तौर पर, इसके ज़रिये सबसे ज़्यादा मुस्लिम आम जनता के विरुद्ध ज़हरीला माहौल बनाया जा रहा है ताकि बेरोज़गारी और महँगाई से त्रस्त जनता का गुस्सा एक नक़ली दुश्मन पर फूट जाये और मोदी सरकार को जनता कठघरे से बाहर कर दे। हिन्दू का दुश्मन मुसलमान या मुसलमान का दुश्मन हिन्दू नहीं है, बल्कि समस्त आम मेहनतकश हिन्दुओं, मुसलमानों, सिखों, ईसाइयों, दलितों, स्त्रियों, आदिवासियों की दुश्मन मोदी सरकार है और पिछले 11 वर्षों से ज़्यादा समय से जारी मोदी मृतकाल में यह बात साबित करने की कोई ज़रूरत नहीं रह गयी है, हर आम मेहनतकश इंसान को यह बात पता है।

बिहार की जनता के सामने क्या विकल्प है?

मोदी सरकार की बढ़ती अलोकप्रियता की वजह है कि मोदी सरकार नवम्बर में आने वाले बिहार चुनावों से पहले ही ईवीएम, मतगणना आदि के घपले करके सन्तुष्ट नहीं हो पा रही थी। इसी वजह से उसने अपनी कठपुतली केचुआ द्वारा एसआईआर का नया घोटाला ईजाद किया है। मक़सद यह है कि चुनाव की समूची प्रणाली को ही बेअसर बना दिया जाय। यानी, जनता की सामूहिक इच्छा चाहे

(पेज 10 पर जारी)

जनता के सामने क्या है विकल्प?

(पेज 9 से आगे)

कुछ भी हो, वह चुनावों की प्रक्रिया में सटीकता के साथ प्रकट ही न हो पाये और चुनावी फ्रॉड के विभिन्न तरीक़ों को अपनाकर भाजपा सत्ता में बरक़रार रहे। सभी जानते है कि देश की गद्दी बचाये रखने के मद्देनज़र उत्तर प्रदेश और बिहार के राज्यों का भारी महत्व है। इसलिए बिहार में भाजपा सत्ता गँवाना नहीं चाहती है। इसलिए साम-दाम-दण्ड-भेद के ज़रिये बिहार की कुर्सी को अपने कब्ज़े में रखने के लिए भाजपा लगी हुई है। राज्यसत्ता की समूची मशीनरी पर उसके द्वारा भीतर से किया गया कब्ज़ा इसमें उसके लिए सहायक बन रहा है। चुनाव आयोग से लेकर न्यायपालिका तक, विपक्षी दलों और नागरिक समाज के लोगों ने हर जगह गुहार लगायी और याचिकाएँ दायर कीं। लेकिन या तो कोई सुनवाई ही नहीं हुई या फिर उपयुक्त वांछनीय कार्रवाई नहीं हुई। ऐसे में, ज़ाहिर है कि महज़ आवेदन और याचिकाएँ देने से भाजपा की मोदी सरकार द्वारा किये जा रहे समूचे चुनावी फ्रॉड को रोका नहीं जा सकता है। इसके लिए व्यापक पैमाने पर जनता को सड़कों पर उतरने के लिए जागरूक, गोलबन्द और संगठित करना होगा। बिखरा हुआ असन्तोष और बिखरा हुआ गुस्सा काफ़ी नहीं है। इस बात को भाजपा व मोदी-शाह की सत्ता भी जानती और समझती है। विपक्षी दलों की रणनीति बिरले ही जनान्दोलनों के रास्ते पर जाती है। वह कुल मिलाकार चुनावी रणनीति के दायरे में ही सिमटे रह जाते हैं। ऐसे में, जनता की क्रान्तिकारी शक्तियों को जनता को इस मसले पर जागरूक, गोलबन्द और संगठित करने की मुहिम तृणमूल धरातल पर सघन और व्यापक रूप से चलानी होगी।

तमाम चुनावी घपलों और घोटालों के बावजूद भाजपा-नीत राजग गठबन्धन की स्थिति बिहार में बहुत अच्छी या सुरक्षित नज़र नहीं आ रही है। जनता में मोदी-शाह सरकार और बिहार की नीतीश सरकार के प्रति जो गुस्सा है, वह एसआईआर व चुनावी फ्रॉड के कारण और भी भड़का हुआ है। इस बात की सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता है कि तमाम फर्जीवाड़े के बावजूद भाजपा-नीत गठबन्धन के लिए बहुमत हासिल करना मुश्किल हो जाये। लेकिन अगर भाजपा और उसके टट्टू बन चुके नीतीश कुमार बिहार में हार भी जाते हैं, तो एसआईआर और समूचे चुनावी फ्रॉड के मसले पर जनान्दोलन की ज़रूरत समाप्त नहीं हो जायेगी। भाजपा पश्चिम बंगाल के चुनावों से पहले वहाँ भी एसआईआर का खेल खेलने के इरादे ज़ाहिर कर चुकी है। साथ ही, आने वाले वर्ष में, पश्चिम बंगाल के अलावा, केरल, असम, तमिलनाडु व पॉण्डीचेरी में भी चुनाव होने वाले हैं। साथ ही, भाजपा 2029 को ध्यान में रखकर भी वोटर सूचियों को बदल डालने की लम्बी योजना पर काम कर रही है। इस फ़ासीवादी मंसूबे को नाकाम करने के लिए प्रगतिशील और जनपक्षधर ताक़तों को मोर्चा बनाकर साथ आने की ज़रूरत है और इस विशिष्ट मुद्दे पर जुझारू संघर्ष के लिए विपक्षी दलों में लड़ने की इच्छा रखने वाले दलों के साथ रणकौशलात्मक मुद्दा-आधारित एकता भी बनायी जा सकती है।

तात्कालिक तौर पर, हम बिहार की जनता का आह्वान करते हैं कि अपने मताधिकार का प्रयोग करते हुए पूरी चौकसी बरतें। किसी भी प्रकार के घपले-घोटाले या फर्जीवाड़े का सन्देह होते ही इस मसले पर हल्ला मचाएँ, शान्त न बैठें। दूसरी बात यह कि एक बात तय कर लें: भाजपा ने आपके प्रदेश के लाखों वैध मतदाताओं का मताधिकार "घुसपैठिये" के फर्जी शोर के आधार पर छीन लिया है, बदले में आप भाजपा-नीत गठबन्धन की वोटबन्दी करें, ताकि तमाम फर्जीवाड़े के बावजूद बिहार विधानसभा चुनाव इनके लिए एक सबक़ बन जाये और ये जनता के इस बुनियादी राजनीतिक जनवादी अधिकार को बेशर्मी और नंगई के साथ छीनने के भावी प्रयासों के पहले हज़ार बार सोचें। तीसरी बात यह कि विपक्ष का महागठबन्धन बिहार की जनता के लिए निश्चित ही कोई वास्तविक विकल्प नहीं है। कोई भी पूँजीवादी दल व उसकी सरकार आज जनता को कुछ ख़ैरात, कुछ तात्कालिक राहत, कुछ रेवड़ियों के अलावा कुछ नहीं दे सकती है क्योंकि इन दलों के पीछे भी पूँजीपति वर्ग की ही आर्थिक ताक़त खड़ी होती है। ये सारे दल विविध तात्कालिक सुधारात्मक कार्य से ज़्यादा कुछ कर ही नहीं सकते हैं, क्योंकि इससे ज़्यादा करने के लिए पूँजीपति वर्ग के हितों की तिलांजलि देनी होगी। इसलिए दूरगामी तौर पर जनता के क्रान्तिकारी विकल्प का निर्माण, एक क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी का निर्माण बिहार में भी करना हमारा कार्यभार है। केवल ऐसी पार्टी ही एक ओर क्रान्तिकारी परिवर्तन के जनसंघर्ष को संगठित कर सकती है और पूँजीवादी जनवादी चुनावों के क्षेत्र में भी जनता के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष को खड़ा कर सकती है, ताकि जागरूक मेहनतकश जनता इस या उस पूँजीवादी दल की पिछलग्गू बनने को मजबूर न हो। इस लक्ष्य के लिए क्रान्तिकारी शक्तियों को आज से ही काम करना होगा, लेकिन फिर भी इसमें निश्चित ही वक़्त लगेगा।

ऐसे में, आज तात्कालिक तौर पर हमारा कार्यभार एक नकारात्मक रणकौशलात्मक कार्यभार है। सभी पूँजीवादी दलों में भाजपा एक विशेष पूँजीवादी दल है; यह एक फ़ासीवादी पूँजीवादी दल है जो विशेष तौर पर मन्दी के दौर में मेहनतकश जनता के पूँजीपति वर्ग द्वारा आर्थिक शोषण की दर को तीव्रतम बनाने का काम करता है और ठीक इसीलिए यह मेहनतकश जनता के सभी जनवादी अधिकारों का भी हनन करता है क्योंकि इसके बिना जनता की लूट की दर को तीव्रतम बनाना सम्भव नहीं होता। इसलिए आज का तात्कालिक नकारात्मक रणकौशलात्मक कार्यभार है: भाजपा और उसके नेतृत्व वाले गठबन्धन की पराजय को सुनिश्चित करना। इसके लिए जो आवश्यक हो, उसी प्रकार जनता को अपने मत का प्रयोग करना चाहिए। एक क्रान्तिकारी सर्वहारा अवस्थिति से 'मज़दूर बिगुल' किसी भी पूँजीवादी दल के समर्थन की हिमायत नहीं करेगा क्योंकि यह सर्वहारा वर्ग द्वारा अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता को त्यागने के समान होगा। लेकिन क्या नहीं करना है, यह स्पष्ट है: मेहनतकश जनता का मत मेहनतकश जनता के सबसे बड़े दुश्मन भाजपा व उसके गठबन्धन को नहीं जाना चाहिए। यह त्रासद है कि आज जनता के सामने कोई क्रान्तिकारी विकल्प नहीं है और इसलिए सकारात्मक तौर पर यह नहीं बताया जा सकता है किसे वोट करें। ऐसी स्थिति में यह हर मेहनतकश, मज़दूर, दमित व शोषित अल्पसंख्यक, दलित या स्त्री को ख़ुद ही विचार कर तय करना होगा। बस इतना ही बताया जा सकता है कि भाजपा की हार को सुनिश्चित करने के लक्ष्य को दिमाग़ में रखकर अपने मताधिकार का प्रयोग करें। भाजपा की हार से और कुछ नहीं होगा लेकिन इतना अवश्य होगा कि दमन का दबाव कुछ घट सकता है, जनता की शक्तियों को अपने आपको गोलबन्द और संगठित करने की मोहलत मिल सकती है, फ़ासीवादियों के हौसले कुछ पस्त होंगे, देश में व्यापक मेहनतकश जनता के बीच एक सन्देश सम्प्रेषित होगा, और सम्भवत: संघर्ष करने पर कुछ सुधार, कुछ तात्कालिक राहतें जनता के पक्ष में हासिल की जा सकें। लेकिन आज यह मोहलत और फ़ासीवादी शक्तियों को एक धक्का लगना, जनसंघर्षों के लिए एक सकारात्मक होगा।

यह याद रखना होगा कि दीर्घकालिक तौर पर, जनता को अपना क्रान्तिकारी विकल्प खड़ा करने की जद्दोजहद में लगना ही होगा। उसे मज़दूरों-मेहनतकशों की ऐसी पार्टी खड़ा करने के लिए लड़ना ही होगा जो पूँजीपतियों के धनबल पर नहीं, बल्कि आम मेहनतकश जनता के संसाधनों के आधार पर चलती हो। ऐसी क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी ही दूरगामी तौर पर क्रान्तिकारी परिवर्तन के मक़सद को पूरा कर मेहनतकशों की सत्ता को स्थापित कर सकती है और ऐसी क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी ही पूँजीवादी चुनावों में प्रभावी रणकौशलात्मक हस्तक्षेप कर आम मेहनतकश जनता को गोलबन्द व संगठित करने के काम को आगे बढ़ा सकती है। इसमें निश्चित ही समय लगेगा। लेकिन यह काम फ़ौरन शुरू न करने की वजह नहीं है, बल्कि काम बिना देरी फ़ौरन शुरू करने की वजह है।

जनान्दोलनों से भयाक्रान्त फ़ासिस्ट भारतीय राज्यसत्ता

(पेज 11 से आगे)

लद्दाख के मसले पर मज़दूर वर्ग का क्या रुख़ होना चाहिए

लद्दाख में पिछले 4-5 वर्षों से जो आन्दोलन चल रहा है वह वहाँ हिन्दुत्ववादी फ़ासीवादी ताक़तों के वर्चस्व में गिरावट का संकेत है। लद्दाख के लोगों के ग़ुस्से के निशाने पर फ़ासीवादी भाजपा है। पहली बार लेह और कारगिल दोनों ज़िलों में रहने वाले सभी मज़हबों को मानने वाले लद्दाखी लोग एकजुट होकर यह आन्दोलन कर रहे हैं। लद्दाख के लोग साम्प्रदायिक आधार पर नहीं बल्कि अपनी साझा माँगों के आधार पर एकजुट हो रहे हैं, जो कि अच्छा संकेत है। यही वजह है कि भारतीय राज्यसत्ता ने बदहवासी में आकर दमन का चाबुक चलाने की ठानी है और संघ परिवार अपना आधार खिसकता देखकर आन्दोलन को बदनाम करने की साज़िशें रच रहा है। परन्तु इस दमन से आन्दोलन ख़त्म होने के बजाय और तेज़ी से फैल रहा है और समूचे लद्दाख के लोगों में एकजुटता का आधार भी बढ़ रहा है। मज़दूर वर्ग को लद्दाख के लोगों की न्यायसंगत और जनवादी माँगों का समर्थन करना चाहिए और इस आन्दोलन के दमन और नेताओं पर फ़र्जी मुक़दमे ठोकने और आन्दोलन को बदनाम करने की फ़ासिस्ट साज़िश की सख़्त भर्त्सना करनी चाहिए। मज़दूर वर्ग को जनवादी अधिकारों और जनवाद पर होने वाले हर फ़ासीवादी हमले की मुखालफत पुरज़ोर तरीक़े से करनी चाहिए।

यह सच है कि सोनम वांगचुक सहित लद्दाख के आन्दोलन से जुड़े तमाम लोगों ने अनुच्छेद 370 को हटाने का समर्थन किया था। यह भी सच है कि सोनम वांगचुक की राजनीति एक सुधारवादी एनजीओपन्थ की राजनीति है और उन्होंने कश्मीरियों के दमन के ख़िलाफ़ कभी कुछ नहीं बोला। परन्तु आज जब फ़ासिस्ट राज्यसत्ता लद्दाख के लोगों के न्यायसंगत और जनवादी आन्दोलन का दमन करने पर उतारू है तो मज़दूर वर्ग के लिए यह लाज़िमी हो जाता है कि वह उनके आन्दोलन का समर्थन करे। दमन-उत्पीड़न की किसी एक भी घटना पर चुप्पी दरअसल आम तौर पर शासक वर्गों के दमन, उत्पीड़न और हिंसा के अधिकार को वैधता प्रदान करती है। ऐसे में, आज भारत में आम मेहनतकश आबादी को भी लद्दाख में चल रहे घटनाक्रम पर सर्वहारा नज़रिये से सही राजनीतिक अवस्थिति अपनाने की आवश्यकता है।

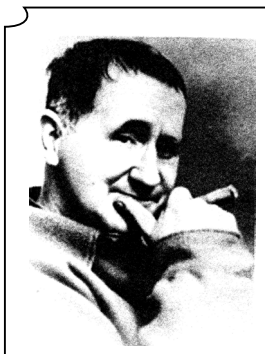

"सबसे बुरा जाहिल वह है जो राजनीतिक रूप से जाहिल है। वह कुछ नहीं सुनता, कुछ नहीं देखता, राजनीतिक जीवन में कोई हिस्सा नहीं लेता। उसे शायद यह पता ही नहीं कि जीवन-यापन की क़ीमत, दालों, आटे, किराए, दवाओं की क़ीमत, सबकुछ राजनीतिक फ़ैसलों पर निर्भर करता है। वह अपनी राजनीतिक अज्ञानता पर गर्व भी करता है, सीना तानकर कहता है कि उसे राजनीति से नफ़रत है। वह मूढ़मति नहीं जानता कि उसकी राजनीतिक अज्ञानता और राजनीति से दूरी वेश्याओं, परित्यक्त बच्चों, लुटेरों और चोरों में सबसे बड़े चोर – बुरे राजनीतिज्ञों को जन्म देती है, जो भ्रष्ट व शोषक बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के टुकड़ख़ोर सेवक होते हैं।"

– बेर्टोल्ट ब्रेष्ट

जर्मनी के महान जनपक्षधर लेखक

लद्दाख में जनवादी व लोकप्रिय माँगों को लेकर चल रहे जनान्दोलन का बर्बर दमन

जनान्दोलनों से भयाक्रान्त फ़ासिस्ट भारतीय राज्यसत्ता

● आनन्द

साल 2019 में अनुच्छेद 370 और 35(A) हटाकर जम्मू-कश्मीर का राज्य का दर्जा छीनने के बाद भारत की फ़ासीवादी ताक़तें वहाँ अमन-चैन, ख़ुशहाली और सामान्य स्थिति बहाल होने के दावे कर रही थीं। इन दावों की कलई कश्मीर घाटी में तो पहले ही खुल चुकी थी, अब लद्दाख में भी ये दावे तार-तार हो चुके हैं।

पिछले 10 सितम्बर से लद्दाख की राजधानी लेह में लद्दाख को राज्य का दर्जा दिलाने और उसे संविधान की छठीं अनुसूची में शामिल करने जैसी माँगों के साथ वहाँ के कई संगठनों द्वारा एक शान्तिपूर्ण प्रदर्शन और भूख हड़ताल का आयोजन किया गया था। भूख हड़ताल पर बैठे दो आन्दोलनकारियों की सेहत गिरने और उनके अस्पताल में दाखिले के बाद 24 सितम्बर को आन्दोलन उग्र हो गया और कुछ युवाओं ने आक्रोश में आकर भारतीय जनता पार्टी के कार्यालय और सीआरपीएफ़ के वाहन सहित कई वाहनों में आग लगा दी। इसके बाद पुलिस ने इस आन्दोलन को बर्बरता से कुचलने की ठान ली और पुलिस की गोलीबारी में 4 लोग मारे गये तथा 70 से ज़्यादा लोग घायल हो गये। बाद में आन्दोलन के एक नेता सोनम वांगचुक को गिरफ़्तार कर लिया गया, विदेशी अंशदान विनियमन अधिनियम (FCRA), 2010 के तहत उनके एनजीओ के खाते फ्रीज़ कर दिये गये और उनपर कुख़्यात राष्ट्रीय सुरक्षा क़ानून लगा दिया गया।

फ़ासिस्ट मोदी-शाह सरकार मीडिया में भाँति-भाँति की ख़बरें प्लाण्ट करके आन्दोलन को चीन, पाकिस्तान या अमेरिका की साज़िश बता रही है। नेपाल और बांग्लादेश के युवा विद्रोहों से भी इसके तार जोड़े जा रहे हैं। इन हास्यास्पद दावों से स्पष्ट है कि भारत के फ़ासिस्ट जनान्दोलनों से कितने भयभीत हैं। यह दीगर बात है कि कई जन आन्दोलनों में घुसपैठ कर बाहरी तत्व व साम्राज्यवादी ताक़तें भी अपनी रोटियाँ सेंकने का प्रयास करती हैं, वैसे ही जैसे भारतीय राज्यसत्ता पड़ोसी मुल्कों में जारी कई आन्दोलनों में अपने तत्वों की घुसपैठ करवाकर करती रही है। लेकिन ऐसे तमाम आन्दोलनों को शुद्ध साज़िश क़रार देने के पीछे की मंशा इन आन्दोलनों द्वारा उठायी जा रही मांगों को ही बदनाम या ग़ैर-जायज़ ठहराना होता है और मोदी-शाह सरकार यही कर रही है। वर्तमान में लद्दाख में चल रहे जनान्दोलन और उसके द्वारा उठायी जा रही माँगों को बेहतर तरीक़े से समझने के लिए हमें लद्दाख के इतिहास पर भी एक निगाह डालनी होगी।

लद्दाख की समस्या: इतिहास के आइने में

कराकोरम और हिमालय पर्वत के बीच स्थित लद्दाख एक शीत मरुस्थल है। इसका एक हिस्सा गिलगिट बल्तिस्तान पाकिस्तान के क़ब्ज़े में है और अकसाई चिन नामक दूसरा हिस्सा चीन के क़ब्ज़े में है। भारत में लद्दाख लेह और कारगिल नामक दो ज़िलों में बँटा है। ग़ौरतलब है कि अगस्त 2019 तक लद्दाख जम्मू व कश्मीर राज्य का हिस्सा था। राष्ट्रीयता, भाषा और संस्कृति के लिहाज़ से जम्मू और कश्मीर दोनों से अलग होने के बावजूद लद्दाख के जम्मू-कश्मीर का भाग होने के पीछे ऐतिहासिक कारण थे। 1846 में सम्पन्न हुए पहले आंग्ल-सिख युद्ध के बाद जब जम्मू व कश्मीर डोगरा राजा गुलाब सिंह के नियन्त्रण में आया उस समय से ही लद्दाख जम्मू व कश्मीर रियासत का हिस्सा बन गया था। ग़ौरतलब है कि 1842 में सिखों द्वारा पराजित होने से पहले तक लद्दाख एक अलग रियासत हुआ करती थी और उसका अलग राजा हुआ करता था। बहरहाल अंग्रेज़ों के भारत छोड़ने के बाद जब जम्मू व कश्मीर एक विशेष और विवादास्पद परिस्थिति में अनुच्छेद 370 के माध्यम से भारतीय यूनियन का हिस्सा बना तो उस रियासत का हिस्सा होने की वजह से लद्दाख भी जम्मू व कश्मीर राज्य में शामिल कर दिया गया। उस समय लद्दाख को जम्मू-कश्मीर राज्य में बने रहने देने के पीछे भारतीय राज्यसत्ता के अपने हित भी थे। कश्मीर घाटी की मुस्लिम बाहुल्य आबादी के प्रतिरोध को प्रतिसन्तुलित करने के लिए भारतीय राज्यसत्ता ने शुरू से ही जम्मू के हिन्दुओं और लेह के बौद्धों को अपनी ओर करने की कोशिश की। संघ परिवार की साम्प्रदायिक फ़ासीवादी राजनीति ने भी धार्मिक आधार पर इस क्षेत्रीय विभाजन को और सुदृढ़ करने का काम किया। 1950 के दशक से ही कश्मीर के लोगों को भारतीय राज्यसत्ता द्वारा राष्ट्रीय दमन का सामना करना पड़ रहा था और भारतीय राज्यसत्ता के साथ उनका अलगाव बढ़ रहा था। लेकिन दूसरी ओर लद्दाख की एक विशिष्ट समस्या थी।

1947 में भारत-पाकिस्तान विभाजन के पहले दक्षिण एशिया से मध्य एशिया के बीच के व्यापार मार्ग पर स्थित होने की वजह से लद्दाख का एक वाणिज्यिक महत्व था। भारत से तुर्किस्तान का रास्ता लेह से होकर जाता था और इस व्यापार मार्ग की वजह से लद्दाख कई सभ्यताओं, धर्मों और भाषाओं के लोगों के मिलन का केन्द्र भी था। परन्तु विभाजन के बाद यह व्यापार मार्ग बन्द हो गया और लद्दाख एक व्यापारिक केन्द्र से भारतीय राज्य के सूदूर सीमान्त क्षेत्र में तब्दील हो गया जिसके पश्चिम में पाकिस्तान की सीमा थी और उत्तर-पूर्व में चीन की सीमा। इस प्रकार जो इलाक़ा कभी व्यापारिक सरगर्मियों का केन्द्र हुआ करता था वह अब सैन्य गतिविधियों का अड्डा बन गया।

भारतीय राज्य के पास जनता की हर माँग का जवाब है – और अधिक दमन!

भारतीय राज्य ने लद्दाख के लोगों में अन्धराष्ट्रवादी विचारों को भी व्यवस्थित तरीक़े से फैलाया जिसके निशाने पर कभी चीन रहता है, कभी पाकिस्तान तो कभी कश्मीर। पूर्व जम्मू-कश्मीर राज्य में कश्मीरी नेताओं के प्रभुत्व और लद्दाख से उसकी दूरी की वजह से 1950 के दशक से ही लद्दाख को जम्मू-कश्मीर से अलग करके केन्द्रशासित प्रदेश बनाने की माँग उठनी शुरू हो गयी थी, हालाँकि यह माँग मुख्यतया लेह से उठती थी जो बौद्ध बाहुल्य क्षेत्र है ना कि कारगिल से जो कि मुस्लिम बाहुल्य है। 1980 और 1990 के दशक में लद्दाख में संघ परिवार की घुसपैठ तेज़ी से बढ़ती है। लद्दाख के सबसे बड़े बौद्ध संगठन लद्दाख बुद्धिस्ट एसोसिएशन (एलबीए) की संघ परिवार से क़रीबी भी बढ़ती है। 1989 में जब कश्मीर घाटी में पाकिस्तान समर्थित आतंकवाद में तेज़ी आयी तो लद्दाख में कश्मीर से अलग होने और लद्दाख को केन्द्रशासित प्रदेश बनाने की माँग भी ज़ोर-शोर से उठने लगी और उस समय एलबीए ने अपना साम्प्रदायिक चेहरा दिखाते हुए कारगिल सहित लद्दाख के सभी हिस्सों में रहने वाले मुस्लिमों का बहिष्कार करने का अभियान चलाया। यह लद्दाख में संघ परिवार की बढ़ती घुसपैठ का प्रमाण था। इस अभियान के नतीजे के तौर पर 1995 में लद्दाख ऑटोनोमस हिल डिस्ट्रिक्ट काउंसिल का निर्माण किया गया जिसके पास एक सीमित हद तक विधायिका और कार्यपालिका के अधिकार हैं। लद्दाख में हिन्दुत्व की फ़ासीवादी विचारधारा का प्रचार-प्रसार करने के लिए संघ परिवार 1997 से वहाँ सिन्धु पर्व मानता आया है। इसके अलावा वह लद्दाख कल्याण संघ जैसे शैक्षिक और सांस्कृतिक संगठनों के ज़रिये भी अपनी ज़हरीली विचारधारा को फैलाता आया है। संघ परिवार की इन कोशिशों के नतीजे के तौर पर ही 2014 में भाजपा ने पहली बार लद्दाख की लोकसभा सीट जीतने में कामयाबी हासिल की और 2019 में भी उसने जीत हासिल की।

5 अगस्त 2019 को फ़ासिस्ट मोदी-शाह सरकार ने जम्मू-कश्मीर से राज्य का दर्जा छीनने के साथ ही साथ उसका विभाजन भी कर दिया और लद्दाख को केन्द्र शासित प्रदेश में तब्दील कर दिया। शुरू में लेह के लोगों ने इस फ़ैसले का स्वागत किया क्योंकि यह उनकी लम्बे समय से माँग थी। परन्तु जल्द ही वहाँ के लोगों को इस फ़ैसले के असली निहितार्थ समझ में आने लगे। यह निरंकुश और स्वेच्छाचारी क़दम भारतीय राज्यसत्ता ने लद्दाख के लोगों की भलाई में नहीं बल्कि कश्मीर में अपनी राष्ट्रीय दमन की नीति को उसकी पराकाष्ठा पर पहुँचाने के अपने मक़सद के साथ ही अपनी सुरक्षा और सामरिक ज़रूरतों के मद्देनज़र लद्दाख पर प्रत्यक्ष नियन्त्रण करने के लिए उठाया था क्योंकि लद्दाख की सीमा चीन और पाकिस्तान दोनों से लगती है। साथ ही लद्दाख में पूँजीवादी विकास की रफ़्तार बढ़ाना भी इस फ़ैसले का एक मक़सद था। अनुच्छेद 370 और अनुच्छेद 35(A) हटने के बाद से लद्दाख से बाहर के लोगों को भी वहाँ ज़मीन और सम्पत्ति ख़रीदने की अनुमति मिल गयी है। ध्यान देने वाली बात यह हैकि लद्दाख की 95 फ़ीसदी से ज़्यादा आबादी आदिवासी है और वहाँ के लोगों को डर है कि बाहरी लोगों द्वारा उनकी ज़मीन और संसाधनों पर क़ब्ज़ा कर लिया जायेगा। वास्तव में यह क़ब्ज़ा पूँजीपतियों, धन्नासेठों और संघ परिवार से जुड़े लोगों द्वारा किया जा रहा है। मुनाफ़े की हवस में पूँजी देश के कोने-कोने तक पहुँच रही है और लोगों की आजीविका के साधनों और पर्यावरण को तबाह कर रही है। लद्दाख जैसे पहाड़ी और दूर-दराज के क्षेत्र भी पूँजी के इस विस्तार से अछूते नहीं रहे हैं। लद्दाख में पिछले कुछ सालों के दौरान कई बड़े-बड़े होटल खुले हैं जो वहाँ पर्यटन उद्योग में बड़ी पूँजी के प्रवेश को दिखाता है। साथ ही पूँजीवादी परियोजनाओं से पर्यावरण का संकट भी गहराने की आशंका भी लोगों की चिन्ता का सबब है। मिसाल के लिए भारत का सबसे बड़ा सोलर और विंड पार्क लद्दाख के उस हिस्से में बनाये जाने की योजना है जहाँ मशहूर पश्मीना बकरियाँ पायी जाती हैं। इस परियोजना से चांगपा चरवाहों के सामने आजीविका का संकट भी उत्पन्न हो गया है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर बड़े पैमाने पर लद्दाख में ज़मीन भारतीय सेना के हवाले की जा रही है और दुर्गम व बीहड़ रास्तों पर भी सड़कें बनायी जा रही हैं जिसकी वजह से पर्यावरण संकट और गहरा रहा है। उपरोक्त सभी वजहों से लद्दाख में रहने वाले आदिवासियों को अपनी संस्कृति और पहचान पर ख़तरा महसूस हो रहा है। दरअसल इस ख़तरे की वास्तविक वजह पूँजीवादी विकास है। ऐसा न समझने की वजह से अक्सर लोग बाहर के आम लोगों को ही अपने वजूद पर ख़तरे के लिए ज़िम्मेदार मानने लगते हैं और पूँजीवाद के ख़िलाफ़ लामबन्द होने के बजाय आम मेहनतकश आप्रवासियों के ख़िलाफ़ हो जाते हैं। देश के अन्य हिस्सों की ही तरह लद्दाख में भी लोगों को अपनी आजीविका और वजूद के संकट से निपटने के लिए पूँजीवाद के ख़िलाफ़ लामबन्द होना होगा।

बहरहाल, इस समय लद्दाख को छठीं अनुसूची में शामिल करने की माँग भी वहाँ काफ़ी लोकप्रिय हो चुकी है। भारतीय संविधान में छठीं अनुसूची में आदिवासी इलाक़ों में रहने वाले लोगों की आजीविका, संसाधनों, संस्कृति व विशिष्ट पहचान की रक्षा के मद्देनज़र इन इलाकों का प्रशासन स्वायत्तशासी संस्थाओं द्वारा करने के प्रावधान हैं। फ़िलहाल इस सूची में पूर्वोत्तर के राज्यों के कुछ हिस्से शामिल हैं। हालाँकि अगर यह माँग मान भी ली जाती है तो भी लद्दाख के आदिवासियों की आजीविका और वजूद का संकट ख़त्म नहीं होगा क्योंकि इस संकट की असली वजह पूँजीवाद है। लद्दाख में चल रहे आन्दोलन की एक और माँग यह है कि लद्दाख का अपना लोक सेवा आयोग होना चाहिए। यह माँग बड़े पैमाने पर बेरोज़गारी के मद्देनज़र उठायी जा रही है जिसको लेकर लद्दाख के युवाओं में ज़बर्दस्त आक्रोश है जो 24 सितम्बर के उग्र प्रदर्शन में भी देखने में आया। इससे स्पष्ट है कि अनुच्छेद 370 के हटने के बाद लद्दाख के हिस्से भी ख़ुशहाली नहीं बदहाली ही आयी है।

(पीछे पेज 10 पर जारी)

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षणमाला – 29

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त (खण्ड-2)

अध्याय – 3

पूँजी के परिपथ - III

● अभिनव

माल-पूँजी का परिपथ

माल-पूँजी के परिपथ का आम सूत्र है:

C' – M' – C…P…C'

जैसा कि हम देख सकते हैं, इस परिपथ के सारे तत्व वही हैं जो मुद्रा-पूँजी और उत्पादक-पूँजी के परिपथ में थे, बस वे अलग क्रम में व्यवस्थित हैं। यह नैसर्गिक है क्योंकि ये तीनों परिपथ औद्योगिक पूँजी के परिपथ के ही तीन रूप हैं और वे उसी के सतत् रूप से जारी रहने के फलस्वरूप अस्तित्व में आते हैं। इसी सूत्र को अगर हम फैलाकर लिखें तो वह कुछ इस प्रकार दिखेगा:

$$C' - M'.M - C<^{L}_{mp} \ldots P \ldots C'$$

जब हम इस परिपथ को फैलाकर लिखते हैं, तो हम देख सकते हैं कि यहाँ उत्पादित माल-पूँजी (C') महज़ मुद्रा-पूँजी के परिपथ और उत्पादक-पूँजी के परिपथ का *परिणाम* मात्र नहीं है, बल्कि यह मुद्रा-पूँजी के परिपथ और उत्पादक-पूँजी के परिपथ की *पूर्वशर्त* भी है क्योंकि एक तो M – C में M – mp भी शामिल है और इसलिए इस हद तक यह उत्पादन के साधनों का उत्पादन करने वाले अन्य औद्योगिक पूँजीपतियों के लिए उनकी माल-पूँजी का मुद्रा-पूँजी में तब्दील होना, यानी C' – M' के चरण का पूर्ण होना है, और वहीं दूसरी ओर बिना C' – M' के सम्पन्न हुए, औद्योगिक पूँजी का परिपथ पुनरुत्पादन को जारी नहीं रख सकता है और मुद्रा-पूँजी और उत्पादक-पूँजी के अगले परिपथ भी सम्भव नहीं हो सकते हैं, क्योंकि माल-पूँजी मुद्रा-पूँजी में तब्दील होती है और पूँजीपति इसी मुद्रा-पूँजी को वापस निवेशित करके उत्पादन के साधन और श्रमशक्ति ख़रीदता है। यानी, यहाँ माल-पूँजी स्वयं अपने ही उत्पादन के तत्वों में तब्दील की जा रही होती है।

जैसे ही हम ऊपर के परिपथ को देखते हैं, यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अगर हम साधारण पुनरुत्पादन की बात कर रहे हैं तो पहला C' और परिपथ के अन्त में आने वाला दूसरा C' बराबर होंगे, जबकि यदि हम विस्तारित पुनरुत्पादन व पूँजी संचय की बात कर रहे हैं तो दूसरा C' पहले C' से बड़ा होगा और उसे हम C'' से भी दर्शा सकते हैं।

बहरहाल, हम सबसे पहले औद्योगिक पूँजी के परिपथ के तीसरे रूप यानी माल-पूँजी के परिपथ की कुछ विशिष्टताओं पर ग़ौर करेंगे, जो इसे मुद्रा-पूँजी और उत्पादक-पूँजी के परिपथों, यानी औद्योगिक पूँजी के परिपथ के पहले और दूसरे रूपों, से अलग करती हैं। पहला फ़र्क तो यह है कि माल-पूँजी के परिपथ में संचरण की समूची प्रक्रिया परिपथ के शुरू में ही सम्पन्न हो जाती है (C' – M' – C) जबकि मुद्रा-पूँजी के परिपथ में संचरण की प्रक्रिया का एक चरण परिपथ की शुरुआत में ही घटित होता है (M – C) जबकि दूसरा चरण परिपथ के अन्त में घटित होता है (C' – M') और उत्पादक-पूँजी के परिपथ में संचरण की पूरी प्रक्रिया पहले और अन्तिम चरण के बीच में सम्पन्न होती है (C' – M' – C)।

दूसरा और कुछ मामलों में सबसे महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि माल-पूँजी के परिपथ में पहला चरण C' के साथ शुरू होता है, न कि C के साथ। प्रस्थान-बिन्दु पर ही हमारे पास महज़ पूँजी-मूल्य नहीं बल्कि पूँजी-मूल्य और बेशी मूल्य से लैस माल (C') होता है जिसका मुद्रा में रूपान्तरण अभी होना होता है। मुद्रा-पूँजी के परिपथ में शुरुआत हमेशा M से होती है न कि M' से। साधारण पुनरुत्पादन की स्थिति में यह बात स्वत: स्पष्ट हो जाती है, लेकिन अगर विस्तारित पुनरुत्पादन भी होता है तो परिपथ M से ही शुरू होता है क्योंकि बेशी मूल्य के उत्पादन के सारे सुराग़ ख़त्म हो चुके होते हैं और मुद्रा-रूप में पूँजी नये परिपथ को मुद्रा की किसी भी मात्रा के रूप में ही शुरू करती है और वह उन्हीं प्रकार्यों को सम्पन्न कर सकती है जिन्हें मुद्रा कर सकती है। दूसरी बात यह है कि यह सम्भव है कि मुद्रा-पूँजी के जिस परिपथ पर हम विचार कर रहे हैं वह वास्तव में उसका पहला परिपथ हो जहाँ M पहली बार निवेशित हो रहा हो और उसे उत्पादन की प्रक्रिया से अभी गुज़रना होता है।

उसी प्रकार, P यानी उत्पादक-पूँजी के परिपथ की बात करें तो आखिरी P अनिवार्यत: पहले P से मात्रा में ज़्यादा हो यह स्पष्ट नहीं होता। इसकी वजह यह है कि अगर पूँजी का संचय भी हो रहा होता है, तो विस्तारित पुनरुत्पादन होना अनिवार्य नहीं होता। अगर श्रमशक्ति और उत्पादन के साधन, यानी उत्पादक-पूँजी के तत्वों का मूल्य बढ़ जाता है, तो यह सम्भव है पूँजी-संचय होने के बावजूद उत्पादन पुराने स्तर पर ही जारी रहे या उससे भी निचले स्तर पर हो। इसलिए उत्पादक-पूँजी के परिपथ के पहले चरण की शुरुआत भी P से होती है, न कि P' से। यहाँ भी बेशी मूल्य के पैदा होने के निशानात मिट चुके होते हैं और उत्पादक-रूप में पूँजी उन्हीं प्रकार्यों को अंजाम दे सकती है, जिन्हें वह श्रमशक्ति व उत्पादन के साधनों के रूप में दे सकती है, यानी उत्पादक उपभोग।

यह केवल माल-पूँजी का परिपथ ही होता है जिसमें परिपथ की शुरुआत ही केवल पूँजी-मूल्य से नहीं बल्कि पूँजी-मूल्य और बेशी मूल्य से होती है क्योंकि C' स्वयं पूँजीवादी उत्पादन का और इसलिए बेशी मूल्य के उत्पादन का परिणाम होता है। मुद्रा-पूँजी के परिपथ में परिपथ की शुरुआत महज़ पूँजी-मूल्य से ही होती है, जिसका मूल्य-संवर्धन अभी उत्पादन की प्रक्रिया द्वारा होना होता है और उत्पादक-पूँजी के परिपथ में भी परिपथ की शुरुआत केवल पूँजी-मूल्य से होती है, जिसका मूल्य-संवर्धन परिपथ के पहले ही चरण में उत्पादन की प्रक्रिया द्वारा अभी होना होता है। लेकिन C'…C' में परिपथ की शुरुआत हमेशा बेशी मूल्य से लैस माल-पूँजी से होती है, जिसका मुद्रा के रूप में वास्तवीकरण होना और मुद्रा-पूँजी में तब्दील होना अभी बाक़ी रहता है। नतीजतन, औद्योगिक पूँजी के परिपथ में C' यानी माल-पूँजी वापस अपने ही उत्पादन के तत्वों में तब्दील होती है

$$(C' - M'.M - C<^{L}_{mp})$$

तो यहाँ C स्वयं इस औद्योगिक पूँजीपति की पूँजी के परिपथ का हिस्सा नहीं होता। जिस हद तक यह C उत्पादन के साधनों में तब्दील होता है, तो वह किसी दूसरे पूँजीपति की माल-पूँजी होती है, और जिस हद तक यह C श्रमशक्ति में तब्दील होता है, तो वह मज़दूरों के हाथों में मौजूद उसका अपना माल होती है। बाज़ार में ये दोनों ही उत्पादन के तत्व यानी उत्पादन के साधन और श्रमशक्ति औद्योगिक पूँजीपति के सामने माल के रूप में मौजूद होने चाहिए। इनके बिकने के बाद ही वे औद्योगिक पूँजीपति की उत्पादक-पूँजी के अंग बन जाते हैं। यहाँ सबसे अहम बात यह है कि औद्योगिक पूँजीपति की माल-पूँजी के परिपथ की शुरुआत कभी भी महज़ C के रूप में, यानी महज़ पूँजी-मूल्य के बराबर मूल्य रखने वाले माल के रूप में नहीं होती है, क्योंकि उसका मूल पूँजी-मूल्य व रूप उत्पादक-पूँजी के तत्वों में तब्दील हो, उत्पादन की प्रक्रिया से गुज़रकर उपयोग-मूल्य के रूप में भी बदल चुका होता है और मूल्य-संवर्धन की प्रक्रिया से गुज़र कर बेशी मूल्य से भी लैस हो चुका होता है। यानी, मूल्य और उपयोग-मूल्य दोनों में परिवर्तन हो चुका होता है और इस परिवर्तन के बाद ही C' माल-पूँजी के परिपथ के प्रस्थान-बिन्दु पर मौजूद होता है।

मार्क्स बताते हैं कि केवल माल-पूँजी के परिपथ में ही उत्पादित माल के रूप में माल-पूँजी में से मूल पूँजी-मूल्य अपने आपको बेशी मूल्य से अलग करता है। चाहे यह प्रक्रिया C' के स्तर पर ही घटित हो, मसलन, जब माल-पूँजी के रूप में माल छोटे-छोटे टुकड़ों में बिकने योग्य होता है, या फिर यह प्रक्रिया C' के M' में तब्दील होने के बाद घटित हो, मसलन, उन स्थितियों में जिसमें समूची माल-पूँजी एक अविभाज्य माल के रूप में, जैसे कि किसी बड़ी मशीन के रूप में मौजूद होती है, जिसे मुद्रा-रूप में तब्दील होने से पहले मूल पूँजी-मूल्य और बेशी मूल्य में विभाजित नहीं किया जा सकता है।

मार्क्स आगे बताते हैं कि इस प्रक्रिया को हम दो रूपों में देख सकते हैं। पहला, जिसमें पूँजी-मूल्य के बराबर मूल्य वाले मालों के बिकने के साथ पूँजीपति के हाथों में उसकी मूल निवेशित पूँजी (कुल स्थिर पूँजी c + कुल परिवर्तनशील पूँजी v) मुद्रा-रूप में वापस आ जाती है और फिर उसके बाद बिकने वाले मालों के साथ पूँजीपति के पास बेशी मूल्य (s) मुद्रा-रूप में आता जाता है; और दूसरा, जिसमें मालों के बिकने वाले हरेक हिस्से को हम मूल पूँजी (स्थिर पूँजी c + परिवर्तनशील पूँजी v) और बेशी मूल्य (s) में उसी अनुपात में तोड़कर देख सकते हैं, जिस अनुपात में समस्त माल उत्पाद के मूल्य में c, v और s मौजूद होते हैं। यानी, हम समूची माल-पूँजी C' को उसके मूल्यगत संघटक अंगों यानी स्थिर पूँजी c, परिवर्तनशील पूँजी v और बेशी मूल्य s के रूप में तोड़कर देख सकते हैं, या फिर C' के हर बिकने वाले हिस्से को भी हम c, v और s के रूप में तोड़कर देख सकते हैं। इसके लिए मार्क्स विस्तृत गणनाओं को पेश करते हैं (*वही,* पृ. 169-70), जिसे पाठक सन्दर्भित कर सकते हैं। अभी उसके विस्तार में जाना हमारे लिए आवश्यक नहीं है।

अगर हम मुद्रा-पूँजी के परिपथ यानी औद्योगिक पूँजी के परिपथ के पहले रूप पर विचार करें तो हम देखते हैं कि पहले मुद्रा-पूँजी द्वारा पूँजीपति माल-बाज़ार और श्रम-बाज़ार से उत्पादन के साधन और श्रमशक्ति ख़रीदता है, संयोजन में ये ही तत्व उसकी उत्पादक-पूँजी के तत्व में तब्दील होते हैं और उत्पादन की प्रक्रिया से गुज़र कर बेशी मूल्य से लदी माल-पूँजी में तब्दील होते हैं। अन्त में, यह माल-पूँजी बिककर मुद्रा-रूप में वापस पूँजीपति के पास आ जाती है। यह परिपथ अपने आप में इस बाबत कुछ भी नहीं बताता है कि बेशी मूल्य का कितना हिस्सा पूँजी में तब्दील किया जाता है या बेशी मूल्य के किसी हिस्से को पूँजी में तब्दील किया ही नहीं जाता। क्योंकि यह मुद्रा-पूँजी का पहला या आखिरी परिपथ भी हो सकता है। यह परिपथ अपने आप में पूर्ण होता है और पूँजीवादी उत्पादन के उद्देश्य को प्रकट कर देता है। यह परिपथ हमें इतना बताता है कि पैसे से ज़्यादा पैसा बनाया जा रहा है, यानी पूँजी का निवेश कर उससे ज़्यादा पूँजी बनायी जा रही है। मार्क्स लिखते हैं:

> "यह धन्धे का एक परिपूर्ण और पूरा हो चुका चक्र है, जिसका नतीजा मुद्रा की एक मात्रा है जिसका इस्तेमाल किसी के भी द्वारा किसी भी उद्देश्य के लिए किया जा सकता है। इस प्रकार इस चक्र को दोबारा शुरू किया जायेगा या नहीं, इस ओर केवल एक सम्भावना के रूप में इशारा होता है। यह बिल्कुल सम्भव है कि M…P…M' अन्तिम परिपथ हो जो किसी वैयक्तिक पूँजी के प्रकार्य के अन्त को दर्शा हो, जिसे अब धन्धे से निकाल लिया जाना हो, या फिर यह किसी पूँजी का पहला परिपथ हो जब अभी नयी-नयी इस प्रकार्य में प्रवेश कर रही हो। यहाँ आम गति है M…M', यानी पैसे से ज़्यादा पैसा बनाना।" (*वही,* पृ. 172, *अनुवाद हमारा*)

कहने का अर्थ है कि यह औद्योगिक पूँजी के उद्देश्य के पूर्ण होने को दिखलाता है और इस परिपथ को निचिश्त तौर पर इस रूप में देखा जा सकता है कि यह किसी पूँजी का पहला या अन्तिम परिपथ है। लेकिन माल-पूँजी के परिपथ पर यह बात लागू नहीं होती है। पहला ही चरण दिखलाता है कि औद्योगिक पूँजी का प्रकार्य पहले से जारी है और उसका नतीजा, यानी बेशी मूल्य से लैस माल-पूँजी पूँजीपति के हाथों में है जिसे पहले मुद्रा-पूँजी और फिर उसी माल के उत्पादन के तत्वों में बदला जाना बाक़ी होता है। इस परिपथ के अन्त में भी बेशी मूल्य से लदी माल-पूँजी होती है, जिसे अभी मुद्रा-पूँजी में तब्दील होना होता है। इसलिए पूँजी का परिपथ अपने आप में पूर्ण नहीं माना जा सकता है।

अगर हम उत्पादक-पूँजी के परिपथ की बात करें तो यह उत्पादक-रूप में पूँजी-मूल्य की मौजूदगी से शुरू होता है। यह स्पष्ट नहीं होता है कि पूँजी संचय हुआ है या नहीं और विस्तारित पुनरुत्पादन हो रहा है या नहीं, यानी यह अपने आप में स्पष्ट नहीं होता है कि यह P है या फिर P' है। परिपथ के शुरुआत में मौजूद उत्पादक-पूँजी उत्पादन से गुज़रती है, बेशी मूल्य से लैस माल पैदा करती है, वह माल-पूँजी बिककर मुद्रा-पूँजी में तब्दील होती है जो बेशी मूल्य के साथ या उसके बिना ही वापस उत्पादन के तत्वों को ख़रीदने के लिए निवेशित होती है। यह परिपथ यहीं समाप्त हो जाता है क्योंकि उत्पादक-पूँजी के तत्व अभी उत्पादन की प्रक्रिया से नहीं गुज़रते हैं। *यहाँ हम महज़ पुनरुत्पादन को देख रहे होते हैं और यह अपने आप में अभिव्यक्त नहीं*

(पेज 13 पर जारी)

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

(पेज 12 से आगे)

होता है कि पूँजी संचय हुआ है या नहीं, उत्पादन साधारण पैमाने पर हो रहा है या फिर विस्तारित पैमाने पर। इसके विपरीत, माल-पूँजी के परिपथ में यह शुरू से ही स्पष्ट होता है कि परिपथ की शुरुआत महज़ पूँजी-मूल्य के साथ नहीं बल्कि पूँजी-मूल्य और बेशी मूल्य के साथ होती है, जिसे मुद्रा में और फिर उत्पादक-पूँजी के तत्वों में तब्दील होना ही होता है, जो कि स्वयं उस पूँजीपति के हाथों में नहीं होती जिसके विशिष्ट परिपथ की हम बात कर रहे हैं, बल्कि उत्पादन के साधनों के मामले में यह अन्य पूँजीपतियों के हाथों में और श्रमशक्ति के मामले में मज़दूर के हाथों में होते हैं। इसके बिना यह परिपथ आगे बढ़ ही नहीं सकता है।

बस एक मामले में P…P और C'…C' समान हैं और वह यह कि M…M' के विपरीत ये परिपथ अपने आपमें पूर्ण नहीं होते क्योंकि मुद्रा-पूँजी के परिपथ के अन्त में पूँजीपति के हाथों में मुद्रा-पूँजी होती है, जिसका वह जो चाहे इस्तेमाल कर सकता है। लेकिन बाकी दोनों परिपथों में अन्त में पूँजीपति के हाथों में पूँजी जिस रूप में होती है, उसमें उसे या तो उत्पादन की प्रक्रिया से गुज़रना ही होता है या फिर उसे संचरण की प्रक्रिया से गुज़रकर मुद्रा-रूप में आना ही होता है, क्योंकि उस रूप में पूँजी का पूँजीपति के लिए कोई भी इस्तेमाल नहीं होता है।

यहाँ जो बात सबसे अहम है वह यह है कि माल-पूँजी का परिपथ औद्योगिक पूँजी के परिपथ का एकमात्र रूप होता है जिसमें परिपथ की शुरुआत ही पूँजी-मूल्य मात्र से नहीं बल्कि बेशी मूल्य से लैस हो चुकी पूँजी के साथ होता है और *इस रूप में वह पहले ही क़दम पर यानी प्रस्थान-बिन्दु से ही पूँजी-सम्बन्ध को प्रदर्शित कर रहा होता है।* इस रूप में C' – M' की प्रक्रिया का घटित होना समूचे परिपथ को निर्धारित करता है और साथ ही c – m – c और C – M – $C<^{L}_{mp}$ दोनों को ही अपने में समेटता है:

$$C'\begin{cases} C- \\ -M' \\ c- \end{cases}\begin{cases} M-C<^{L}_{mp} \\ m-c \end{cases}\ldots P\ldots C'$$

यानी, परिपथ के केवल इसी रूप में समूचे माल-उत्पाद का उपभोग अन्तर्निहित होता है। इसमें पूँजीपति का वैयक्तिक उपभोग (c – m – c) भी शामिल होता है और उत्पादक उपभोग

$$(C - M - C<^{L}_{mp})$$

भी शामिल होता है और इस उत्पादक उपभोग के ही अंग के रूप में मज़दूर का वैयक्तिक उपभोग (C – L) भी शामिल होता है। यहाँ यह ग़ौर करने वाली बात है कि इस समूची प्रक्रिया को हम *एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में ही* समझ सकते हैं, न कि केवल एक औद्योगिक पूँजी के परिपथ पर अलग से विचार करते हुए। मार्क्स लिखते हैं:

> "C'…C' के रूप में, हम समूचे माल उत्पाद के उपभोग को पूँजी के परिपथ के सामान्य पथ के पूरे होने की पूर्वशर्त मानकर चलते हैं...इस प्रकार अपनी सम्पूर्णता में उपभोग – वैयक्तिक और उत्पादक उपभोग समेत – C' के परिपथ में एक पूर्वशर्त के रूप में शामिल होता है। उत्पादक उपभोग...हर पूँजी द्वारा किया जाता है। अलग-अलग पूँजीपतियों के अस्तित्व के लिए आवश्यक वैयक्तिक उपभोग के अलावा वैयक्तिक उपभोग की यहाँ सिर्फ़ एक सामाजिक कार्रवाई के रूप में पूर्वकल्पना की जाती है, जो किसी भी रूप में किसी एक अकेले पूँजीपति की कार्रवाई नहीं होता है।
>
> "रूप-I और रूप-II में, समूची गति अपने आपको निवेशित पूँजी मूल्य की गति के रूप में पेश करती है। रूप-III में, मूल्य-संवर्धित पूँजी, कुल माल उत्पाद के रूप में, आरम्भ-बिन्दु का निर्माण करती है, और गतिमान पूँजी, माल-पूँजी के रूप में मौजूद होती है। केवल मुद्रा में इसके रूपान्तरण के बाद ही इस गति को पूँजी की गति और आय की गति के रूप में विभाजित किया जा सकता है। एक ओर व्यक्तिगत उपभोग निधि और दूसरी ओर पुनरुत्पादन निधि में कुल सामाजिक उत्पाद का विभाजन और हर वैयक्तिक माल-पूँजी के उत्पाद का विशिष्ट विभाजन पूँजी के परिपथ के इस रूप में शामिल होता है।" (*वही*, पृ. 173-74)

मुद्रा-पूँजी का परिपथ विस्तारित पुनरुत्पादन की महज़ सम्भावना को पेश करता है। उत्पादक-पूँजी के परिपथ की शुरुआत पहले से कम या ज़्यादा पूँजी-मूल्य के साथ हो सकती है, भले ही उसके पहले पूँजी का संचय किया गया हो, जैसा कि हमने पहले ज़िक्र किया। अगर उत्पादक-पूँजी के परिपथ के नये चक्र की शुरुआत के दौरान उत्पादन के साधनों की क़ीमत और श्रमशक्ति का मूल्य बढ़ जाता है, तो पूँजी-संचय के बाद भी यह सम्भव है कि उत्पादक-पूँजी का परिपथ पहले जितने या उससे भी कम स्तर पर शुरू हो। इसका विपरीत भी सम्भव है। यह मुमकिन है कि पूँजी संचय न किया जाय और उसके बावजूद उत्पादक-पूँजी के तत्वों के सस्ते हो जाने के कारण उत्पादन के पैमाने का विस्तार हो जाये। यहाँ भी विस्तारित पुनरुत्पादन कोई पूर्व-प्रदत्त तथ्य नहीं है। यही वजह है कि केवल माल-पूँजी के परिपथ में ही परिपथ की शुरुआत ही बेशी मूल्य से लैस पूँजी-मूल्य के साथ होती है और यह बिल्कुल स्पष्ट होता है।

माल-पूँजी के परिपथ में स्वयं माल का अस्तित्व ही उत्पादन की पूर्वशर्त होता है। इसे हम इस बात से समझ सकते हैं कि जैसे ही माल-पूँजी को वापस अपने ही उत्पादन के तत्वों में, यानी उत्पादन के साधनों और श्रमशक्ति में, बदला जाना होता है, वैसे ही यह प्रश्न खड़ा हो जाता है कि उत्पादन के साधन, जो किसी अन्य पूँजीपति की माल-पूँजी ही है, बाज़ार में मालों के रूप में उपलब्ध हैं या नहीं, और श्रम बाज़ार में श्रमशक्ति की पर्याप्त आपूर्ति है या नहीं। अगर ऐसा नहीं है, तो परिपथ का जारी रहना असम्भव हो जाता है। मुद्रा-पूँजी के परिपथ में ऐसी बाधा नहीं उत्पन्न होती क्योंकि उत्पादन के साधनों या श्रमशक्ति के उपलब्ध न होने पर भी पूँजी *एक ऐसे रूप में, यानी मुद्रा-रूप में,* पूँजीपति के हाथों में मौजूद होती है, जिसे वह औद्योगिक पूँजी के मौजूद परिपथ से निकालकर किसी अन्य उद्देश्य के लिए निवेशित कर सकता है। इसलिए सामाजिक तौर पर निश्चित मालों की उपस्थिति माल-पूँजी के परिपथ के जारी रहने की पूर्वशर्त होती है और इन निश्चित मालों की मौजूदगी उस औद्योगिक पूँजी के परिपथ का अंग नहीं होती है जिस पर हम विचार कर रहे हैं, बल्कि उसकी सीमा और उसके नियन्त्रण से बाहर होती है।

माल-पूँजी के परिपथ की एक अन्य विशिष्टता यह है कि इसका आरम्भ-बिन्दु और समाप्ति-बिन्दु, यानी बेशी मूल्य से लैस माल, दोनों ही एक *वास्तविक रूपान्तरण*, यानी उत्पादन द्वारा नये उपयोग मूल्य के निर्माण और मूल्य-संवर्धन द्वारा बेशी मूल्य के उत्पादन का परिणाम हैं। मुद्रा-पूँजी के परिपथ और उत्पादक-पूँजी के परिपथ में परिपथ की शुरुआत में मौजूद पूँजी-मूल्य और परिपथ के अन्त में मौजूद पूँजी-मूल्य (और मुद्रा-पूँजी के परिपथ में मामले में बेशी मूल्य) एक *औपचारिक रूपान्तरण* यानी संचरण, या ख़रीद-फ़रोख़्त का परिणाम होते हैं, जिसमें बस पूँजी-मूल्य के रूप का अन्तर होता है, उसमें कोई मूल्य-परिवर्तन नहीं होता। मार्क्स बताते हैं कि M…M' और P…P के रूपों में अगर हम अन्तिम चरण की बात करें तो वहाँ पूँजी हमारे पास मुद्रा-रूप में या उत्पादक-पूँजी के तत्वों के रूप में मौजूद होती है। मुद्रा-पूँजी के परिपथ की बात करें तो स्पष्ट है कि अन्त में मौजूद मुद्रा-पूँजी माल-पूँजी के रूपान्तरण के ज़रिये अस्तित्व में आयी होती है और इसलिए यहाँ दूसरे उपभोक्ताओं के हाथों में मुद्रा होना अनिवार्य है क्योंकि उसके बिना पूँजीपति अपनी माल-पूँजी को बेचकर उसे मुद्रा में रूपान्तरित नहीं कर सकता है। अगर हम उत्पादक पूँजी के परिपथ की बात करें तो अन्त में मौजूद उत्पादक-पूँजी दूसरे पूँजीपतियों या व्यापारियों के हाथों में उत्पादन के साधनों के मौजूद होने और मज़दूरों के रूप में श्रमशक्ति के मौजूद होने की पूर्वकल्पना करती है क्योंकि इसके बिना पूँजी उत्पादन के तत्वों में तब्दील नहीं की जा सकती है। लेकिन मुद्रा-पूँजी और उत्पादक-पूँजी के परिपथों में इस औद्योगिक पूँजी के परिपथ से बाहर मुद्रा और उत्पादन के तत्वों की मौजूदगी की पूर्वशर्त *केवल आखिरी चरण में* होती है। इसलिए अगर हम मुद्रा-पूँजी के परिपथ की बात करें तो यहाँ यह कल्पना करना सम्भव है कि M यहाँ पहली मुद्रा-पूँजी है, जो इतिहास के मंच पर प्रकट हुई है। उसी प्रकार, उत्पादक-पूँजी के परिपथ के मामले में भी यह कल्पना करना सम्भव है कि यहाँ पहला P इतिहास के मंच पर प्रकट होने वाली पहली उत्पादक-पूँजी है। मार्क्स लिखते हैं:

> "रूप-I में M एकमात्र मुद्रा-पूँजी हो सकती है, और रूप-II में P एकमात्र उत्पादक-पूँजी हो सकती है, जो ऐतिहासिक रंगमंच पर प्रकट हो रही हो।" (*वही*, पृ. 175, *अनुवाद हमारा*)

लेकिन माल-पूँजी के मामले में ऐसा नहीं है। माल-पूँजी के परिपथ के ऊपर विस्तारित किये गये रूप पर एक बार फिर से निगाह डालते हैं:

$$C'\begin{cases} C- \\ -M' \\ c- \end{cases}\begin{cases} M-C<^{L}_{mp} \\ m-c \end{cases}\ldots P\ldots C'$$

जैसा कि हम देख सकते हैं पहले ही चरण, यानी

$$C' - M' - C<^{L}_{mp}$$

और c – m – c में ही हम इस पूँजी के परिपथ के बाहर पूँजी के अस्तित्व की पूर्वकल्पना करने को मजबूर हैं। पूँजीपति के माल-पूँजी में पूँजी-मूल्य और बेशी मूल्य के अलग-अलग संचरण को देखें हम पाते हैं कि इस पूँजी के परिपथ के बाहर उसके माल के ख़रीदारों के हाथ में मुद्रा होना अनिवार्य है और साथ ही माल (L) और माल-पूँजी (mp) का होना भी अनिवार्य है। इस प्रकार, माल-पूँजी का परिपथ अपने परिपथ से बाहर मालों और मुद्रा दोनों के ही पहले से अस्तित्व की पूर्वकल्पना करता है, जिसके बिना उसका पहला चरण भी पूरा नहीं हो सकता है।

मार्क्स बताते हैं कि पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के विकसित होने के साथ अधिकांश माल माल-पूँजी के रूप में ही अस्तित्वमान होते हैं। पूँजीवादी उत्पादन बड़े पैमाने का उत्पादन होता है और पूँजीवादी उत्पादक आम तौर पर अपने उत्पादन के साधन के तौर पर जब ऐसे माल भी ख़रीदता है जो साधारण माल उत्पादक पैदा करते हैं, तो वह सीधे साधारण माल उत्पादक से नहीं ख़रीदता क्योंकि आम तौर पर कोई एक साधारण माल उत्पादक उस मात्रा में मालों की आपूर्ति कर ही नहीं सकता है, जिसकी पूँजीवादी माल उत्पादन को आवश्यकता होती है, और साथ ही पूँजीपति उत्पादन के साधनों को ख़रीदने के लिए दस माल उत्पादकों के पास नहीं दौड़ता है। वह ये उत्पादन के साधन जो कि साधारण माल उत्पादक पैदा कर रहे हैं, व्यापारी से ख़रीदता है जो कि साधारण माल उत्पादकों के मालों को उनके मूल्य से कम क़ीमत पर असमान विनिमय के ज़रिये ख़रीदता है। व्यापारिक पूँजीपति के हाथों में ये माल उसकी माल-पूँजी का ही अंग बन जाते हैं। इसलिए पूँजीपति या तो स्वयं उत्पादन के साधनों का उत्पादन करने वाले पूँजीपतियों से ये माल ख़रीदता है या फिर व्यापारिक पूँजीपति से ख़रीदता है। दोनों ही सूरत में ये उत्पादन के साधन किसी पूँजीपति की माल-पूँजी के रूप में अस्तित्वमान होते हैं। अन्य पूँजीपतियों की ये माल-पूँजी बाज़ार में ख़रीदार औद्योगिक पूँजीपति के लिए महज़ माल ही होते हैं, लेकिन जब उन्हें ख़रीद लिया जाता है तो वह उसकी उत्पादक-पूँजी के तत्व बन जाते हैं। श्रमशक्ति हर सूरत में साधारण माल के रूप में ही अस्तित्वमान होती है और श्रम बाज़ार में भी वह एक माल के रूप में ही अस्तित्वमान होती है और केवल ख़रीदे जाने के बाद ही वह ख़रीदार पूँजीपति के उत्पादक-पूँजी का एक तत्व बन जाती है।

बहरहाल, उपरोक्त कारणों के चलते मुद्रा-पूँजी और उत्पादक-पूँजी के परिपथों से अलग माल-पूँजी का परिपथ शुरू से ही अपने परिपथ के बाहर अन्य औद्योगिक पूँजियों की मौजूदगी की पूर्वकल्पना करता है। *यही वजह है कि यह रूप यानी माल-पूँजी के परिपथ का रूप न केवल अलग-अलग वैयक्तिक पूँजियों के परिपथों का एक रूप बन जाता है, बल्कि यह उन सभी पूँजियों के कुल योग, यानी कुल सामाजिक पूँजी की गति पर लागू होने वाला एक रूप भी बन जाता है। चूँकि केवल माल-पूँजी के परिपथ में ही हम मूल पूँजी-मूल्य और साथ ही बेशी मूल्य दोनों की ही गतियों को एक साथ देखते हैं, इसलिए कुल सामाजिक पूँजी की गति को केवल माल-पूँजी के परिपथ के रूप द्वारा ही समझा जा सकता है।* केवल यही रूप समाज के कुल वैयक्तिक उपभोग और कुल उत्पादक उपभोग दोनों को उपयुक्त रूप से अभिव्यक्त कर सकता है। जब हम कुल सामाजिक पूँजी की गति के अध्ययन के लिए माल-पूँजी के परिपथ का प्रयोग करते हैं तो इसमें प्रत्येक व्यक्तिगत औद्योगिक पूँजी की गति अपने आपमें महज़ आंशिक होती है और अन्य औद्योगिक पूँजियों के साथ अन्तर्गुन्थित होती है। यहाँ हम किसी देश की अर्थव्यवस्था के कुल माल उत्पाद पर विचार करते हैं, जिसका एक हिस्सा ख़र्च हो चुके उत्पादन के तत्वों की भरपाई में जाता है, जिसे हम स्थानापन्न उत्पाद कहते हैं, जबकि दूसरा हिस्सा सभी वर्गों के व्यक्तिगत उपभोग में चला जाता है। *इसलिए C'...C' को समूची सामाजिक पूँजी की गति के रूप में भी समझा जा सकता है।* वास्तव में, केवल यही रूप है जिसे कुल सामाजिक पूँजी की गति को समझने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है क्योंकि यह पूँजी और बेशी मूल्य दोनों की गतियों को अपने अन्दर समेटता है। यही वजह है कि पूँजी के परिपथ का यह तीसरा रूप समूची पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के पुनरुत्पादन की प्रक्रिया को समझने के लिए सबसे महत्वपूर्ण हो जाता है। मार्क्स लिखते हैं:

> "लेकिन ठीक इसी वजह से कि परिपथ C'…C' अपने विवरण के दौरान रूप C (=L+mp) में एक दूसरी औद्योगिक पूँजी के अस्तित्व की पूर्वकल्पना करता है...यह रूप स्वयं यह माँग करता है कि इसे महज़ पूँजी के परिपथ के एक सामान्य रूप के तौर पर, यानी एक ऐसे सामाजिक रूप के तौर पर न समझा जाय जिसके तहत हरेक अलग-

(पेज 14 पर जारी)

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

(पेज 13 से आगे)

अलग औद्योगिक पूँजी पर विचार किया जा सकता है...और इस प्रकार केवल एक ऐसे रूप के तौर पर नहीं समझा जाय जो सभी वैयक्तिक औद्योगिक पूँजियों के लिए साझा है, बल्कि साथ ही इसे वैयक्तिक पूँजियों के कुल योग पर लागू होने वाले गति के रूप में, यानी पूँजीपति वर्ग की कुल सामाजिक पूँजी पर लागू होने वाले रूप के तौर पर समझा जाय, एक ऐसी गति के रूप में जिसमें किसी भी वैयक्तिक औद्योगिक पूँजी की गति बस एक आंशिक गति के रूप में प्रकट होती है, जो अन्य औद्योगिक पूँजियों की गति के साथ अन्तर्गुन्थित है और उनके द्वारा निर्धारित होती है। मिसाल के तौर पर, अगर हम किसी देश के कुल वार्षिक माल उत्पाद पर विचार करते हैं, और उस गति का विश्लेषण करते हैं जिसमें उसका एक हिस्सा सभी अलग-अलग धन्धों की उत्पादक पूँजी की भरपाई करता है, और दूसरा हिस्सा विभिन्न वर्गों के व्यक्तिगत उपभोग में जाता है, तो हम सामाजिक पूँजी और इसके द्वारा उत्पादित बेशी मूल्य या बेशी उत्पाद दोनों की ही गति के रूप के तौर पर C'…C' पर विचार करते हैं।" (*वही,* पृ. 177, *अनुवाद हमारा*)

आगे मार्क्स बताते हैं कि जब हम एक औद्योगिक पूँजी के परिपथ के सन्दर्भ में C'…C' के रूप पर विचार करते हैं, तो हम कई समस्याओं के स्वत: समाधान की कल्पना कर लेते हैं, लेकिन जब हम कुल सामाजिक पूँजी की गति का अध्ययन करते हुए C'…C' पर विचार करते हैं, तो ये समस्याएँ स्वत: समाधित नहीं होती हैं। यहाँ पर मार्क्स समूचे पूँजीवादी उत्पादन में मौजूद अराजकता की ओर इशारा करते हैं, जिसमें वह अलग-अलग उत्पादन की शाखाओं और अलग-अलग पूँजियों की अन्तर्क्रिया में समानुपातिकता की मौजूदगी के सांयोगिक चरित्र की ओर इशारा करते हैं। एक पूँजी का अध्ययन करते हुए हम उत्पादन के तत्वों की बाज़ार में मौजूदगी, श्रमशक्ति की बाज़ार में मौजूदगी, माल-पूँजी के लिए प्रभावी माँग रखने वाले ख़रीदारों की मौजूदगी की पूर्वकल्पना कर सकते हैं। लेकिन जब हम कुल सामाजिक पूँजी की गति का अध्ययन करते हुए माल-पूँजी के परिपथ के रूप का इस्तेमाल करते हैं, तो सभी उत्पादन-शाखाओं और पूँजियों के बीच सम्बन्ध के मामले में हम ऐसी सहज पूर्वकल्पना नहीं कर सकते हैं। इसलिए मार्क्स लिखते हैं:

"यह तथ्य कि सामाजिक पूँजी वैयक्तिक पूँजियों (जिसमें जॉइण्ट स्टॉक पूँजी और राजकीय पूँजी भी इस हद तक शामिल होती है कि सरकारें भी उत्पादक उजरती-श्रम का खदानों, रेलवे, आदि में इस्तेमाल करती हैं और इस प्रकार औद्योगिक पूँजीपति के तौर पर ही काम करती हैं) के कुल योग के बराबर होती है, और यह तथ्य कि सामाजिक पूँजी की कुल गति सभी वैयक्तिक औद्योगिक पूँजियों की गतियों का बीजगणितीय योग होती है; एक अलग औद्योगिक पूँजी की गति के रूप में इस गति को उन परिघटनाओं से बिल्कुल अलग परिघटनाओं को प्रदर्शित करने से नहीं रोकती, जो यही गति तब प्रदर्शित करती है जब उसे सामाजिक पूँजी की कुल गति के एक अंग के रूप में, यानी सामाजिक पूँजी के अन्य अंगों की गतियों से इसके सम्बन्ध में देखा जाता है; इस बाद वाले पहलू के मामले में, उन समस्याओं का समाधान किया जा सकता है, बजाय यह मान लेने के कि उनका समाधान स्वत: इस अध्ययन से निकल जाता है, जिनका समाधान एक अकेली औद्योगिक पूँजी के परिपथ पर विचार करते हुए पूर्वकल्पित मान लेना अनिवार्य होता है।" (*वही,* पृ. 177, *अनुवाद हमारा*)

मतलब यह कि एक अकेली औद्योगिक पूँजी की गति के अध्ययन में जब हम परिपथ के तीसरे रूप यानी माल-पूँजी के परिपथ के रूप को लागू करते हैं, तो उन समस्याओं के समाधान की हम पूर्वकल्पना कर लेते हैं, जिन समस्याओं के समाधान की पूर्वकल्पना इसी वैयक्तिक पूँजी की गति का समूची सामाजिक पूँजी के गति के एक अंग के रूप में अध्ययन करते हुए हम नहीं कर सकते हैं। वहाँ उत्पादन की अलग-अलग शाखाओं व अलग-अलग पूँजियों की अन्तर्क्रिया में समानुपातिकता का प्रश्न समस्या को एक अलग रूप में और एक अलग स्तर पर उपस्थित करता है। इसलिए कुल सामाजिक पूँजी के पुनरुत्पादन का अध्ययन करते समय इस रूप यानी C'…C' को लागू करने के साथ कुछ नये प्रश्न खड़े हो जाते हैं।

जैसा कि हमने ऊपर बताया, C'…C' के रूप का प्रयोग हम कुल सामाजिक पूँजी की गति के अध्ययन में इसलिए कर सकते हैं क्योंकि इसमें हम शुरू से ही सिर्फ़ पूँजी ही नहीं बल्कि उसके द्वारा पैदा बेशी मूल्य की गति के पथ का भी अध्ययन करते हैं और इस प्रकार समूची औद्योगिक पूँजी और उसके उत्पाद की गति का अध्ययन करते हैं। किसी समाज की कुल सामाजिक पूँजी के कुल माल उत्पाद का एक हिस्सा ख़र्च हो चुके उत्पादन के तत्वों की भरपाई में जाता है, दूसरा हिस्सा यानी बेशी मूल्य या बेशी उत्पाद स्वयं दो हिस्सों में विभाजित होता है, जिसमें से एक पूँजीपति की आय में तब्दील होकर उसके व्यक्तिगत उपभोग में चला जाता है, जबकि दूसरा हिस्सा संचित होता है और फिर से उत्पादन में लगता है।

इस प्रकार, M'…M' मूल्य-संवर्धन के लक्ष्य, यानी पैसा से ज़्यादा पैसा बनाने के लक्ष्य को प्रदर्शित करता है। P…P उत्पादन की प्रक्रिया को पुनरुत्पादन की प्रक्रिया के रूप में अभिव्यक्त करता है, चाहे वह साधारण स्तर पर हो या फिर विस्तारित स्तर पर। *C'...C' हमेशा शुरू से ही बेशी मूल्य और मूल पूँजी मूल्य दोनों की ही गति को प्रदर्शित करता है और इसलिए सामाजिक तौर पर वह स्थानापन्न उत्पाद और बेशी उत्पाद दोनों की ही गति को प्रदर्शित कर सकता है और इसीलिए वह समूचे उत्पादक उपभोग और वैयक्तिक उपभोग दोनों की ही प्रक्रिया को अपने भीतर समेटता है।* अब अलग-अलग औद्योगिक पूँजियों के आपसी अनतर्गुन्थन, उनकी आपसी अन्तर्क्रिया का प्रश्न केन्द्रीय प्रश्न बन जाता है और यह प्रदर्शित करना होता है कि यह प्रक्रिया किन स्थितियों में सुचारू रूप से सम्पन्न हो सकती है या किन स्थितियों में यह सुचारू रूप से सम्पन्न नहीं हो सकती है। दूसरे शब्दों में, किन स्थितियों में पूँजीवादी व्यवस्था का पुनरुत्पादन हो सकता है और किन स्थितियों में यह पुनरुत्पादन होना मुश्किल हो जाता है, यह प्रश्न केन्द्रीय स्थान ले लेता है।

चूँकि C'…C' अपने प्रस्थान-बिन्दु पर ही कुल उत्पाद से शुरुआत करता है इसलिए जब हम विस्तारित पुनरुत्पादन पर विचार कर रहे होते हैं, तो हम तत्काल ही पाते हैं कि यह तभी सम्भव हो सकता है जब विस्तारित पुनरुत्पादन के लिए अतिरिक्त उत्पादन के तत्व यानी उत्पादन के साधनों का उत्पादन हुआ हो, अतिरिक्त श्रमशक्ति की आपूर्ति मौजूद हो और साथ ही अतिरिक्त उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन भी हुआ हो। इसके बिना, सामाजिक पैमाने पर विस्तारित पुनरुत्पादन सम्भव नहीं हो सकता। साथ ही, इन तत्वों की उपलब्धता न सिर्फ़ सही मात्रा में होनी चाहिए बल्कि सही आपसी अनुपात में भी होनी चाहिए। यानी, मौजूदा चक्र में उत्पादित C' में ही संचित पूँजी के सभी भौतिक तत्व शामिल होने चाहिए।

अन्त में, मार्क्स इस रूप यानी C'…C' के परिपथ-रूप की एक सीमा की ओर इशारा करते हैं। वह कहते हैं कि तीसरे रूप में हम उत्पादन व पुनरुत्पादन की प्रक्रिया की पूर्वशर्त के रूप में माल बाज़ार में निश्चित मालों की उपस्थिति पर विचार करते हैं। अगर हम इसी रूप पर विचार करते हैं तो हम यह मानकर चलते हैं कि उत्पादन के सभी तत्व मालों के संचरण से ही निकलते हैं और माल बाज़ार में मौजूद होते हैं। यह एकतरफ़ा नज़रिया उत्पादन की प्रक्रिया के उन तत्वों को नज़रन्दाज़ कर देता है जो मालों के संचरण से स्वतन्त्र या उसके बाहर मौजूद होते हैं। यहाँ उनका इशारा श्रमशक्ति की आपूर्ति पर है, जो साधारण माल नहीं है और साधारण माल बाज़ार में मौजूद नहीं होता है और जिसकी उपलब्धता का प्रश्न केवल मालों के संचरण से ही नहीं समझा जा सकता है।

कुल मिलाकर, जहाँ तक समूची पूँजीवादी व्यवस्था के पुनरुत्पादन का प्रश्न है, पूँजी के परिपथ का यह तीसरा रूप यानी माल-पूँजी का परिपथ सबसे महत्वपूर्ण है। यह पूँजी और बेशी मूल्य की समूची गति को विवरित करता है और उत्पादन की शाखाओं के बीच समानुपातिकता के प्रश्न को पेश करता है। कुछ मार्क्सवादी अर्थशास्त्रियों ने बाद में मार्क्स की *पूँजी* के खण्ड-2 के एक कुपाठ के आधार पर या उसकी ग़लत समझदारी के आधार पर पूँजीवादी उत्पादन में समानुपातिकता के अभाव को ही पूँजीवादी संकट के मूल कारण के तौर पर पेश किया, यानी पूँजीवादी उत्पादन की अराजकता को संकट के आधारभूत कारण के तौर पर पेश किया, जबकि वास्तव में मार्क्स यहाँ केवल उन स्थितियों के विश्लेषण की बात कर रहे हैं, जिसमें पूँजीवादी अर्थव्यवस्था अपने आपको उत्पादन की विभिन्न शाखाओं के बीच कमोबेश उचित अनुपातों के साथ पुनरुत्पादित कर सकती है और जिसमें वह ऐसा नहीं कर सकती है। जब हम समानुपातिकता के प्रश्न को ही आधारभूत प्रश्न बना देते हैं, तो पूँजीवादी व्यवस्था के संकट की समस्या का समाधान नियोजन बन जाता है। नतीजतन, अगर पूँजीवादी राज्य समुचित नियोजन करे तो फिर पूँजीवादी व्यवस्था संकटमुक्त होकर अजर-अमर बन सकती है। लेकिन इतिहास ने दिखलाया कि किसी भी प्रकार का और किसी भी मात्रा में नियोजन पूँजीवाद को संकट से नहीं बचा सकता है, क्योंकि संकट का आधारभूत कारण समानुपातिकता का अभाव या निश्चित वर्गों के पास प्रभावी माँग का अभाव नहीं होता है। उल्टे समानुपातिकता का होना या न होना, प्रभावी माँग का होना या न होना तो पूँजीवाद में लाभप्रदता की गति का परिणाम मात्र होता है। वास्तव में, उत्पादन की शाखाओं, विभिन्न वैयक्ति पूँजियों और माँग व आपूर्ति के बीच के ये अनुपात स्वयं पूर्वप्रदत्त नहीं होते, बल्कि स्वयं पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में मुनाफ़े की औसत दर की गति से निर्धारित होते हैं। इस पहलू को मार्क्स *पूँजी* के तीसरे खण्ड में विस्तार से समझाते हैं कि उत्पादन की शाखाओं के बीच मूल्यों के प्रवाह और उपयोग मूल्यों के प्रवाह के बीच के उचित अनुपात का पैदा होना या न होना स्वयं लाभप्रदता की गति का एक प्रकार्य मात्र होता है, जो स्वयं श्रम और पूँजी, समाजीकृत उत्पादन व निजी विनियोग के बीच अन्तरविरोध की अभिव्यक्ति होता है। इसके विस्तार में हम *पूँजी* के खण्ड-3 पर चर्चा करते समय ही आयेंगे, जहाँ हम मार्क्स के संकट-सिद्धान्त पर विस्तार से बात करेंगे।

लेकिन अभी फिलहाल हमें सिर्फ़ यह समझने की आवश्यकता है कि कुल सामाजिक पूँजी की गति को समझने, उसके अन्तरविरोधों को समझने, उत्पादन की शाखाओं के बीच मूल्यों के प्रवाह और उपयोग मूल्यों के प्रवाह की समानुपातिकता को समझने और इसमें निहित समस्याओं और संकट की अभिव्यक्तियों को समझने के लिए माल-पूँजी का परिपथ बेहद महत्वपूर्ण है क्योंकि पूँजी के परिपथ के इसी रूप को हम कुल सामाजिक पूँजी पर लागू कर सकते हैं। वजह यह कि केवल इसी परिपथ में हम शुरू से ही केवल पूँजी-मूल्य की गति की पड़ताल नहीं करते हैं, बल्कि उसके साथ उसके द्वारा पैदा बेशी मूल्य की गति की भी पड़ताल करते हैं। सामाजिक पुनरुत्पादन को समझने के लिए इन अर्थों में औद्योगिक पूँजी के परिपथ का यह रूप सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

(अगले अंक में जारी)

लुटेरे धनकुबेरों का नाम लेना भी गुनाह!

(पेज 15 से आगे)

हैं, इनके लिए अन्तरिम आदेश (ex-parte) दिये जाते हैं। अम्बानी के बेटे के ख़िलाफ़ वन्तारा केस में मात्र 5 दिन में पूरी कार्यवाही हो जाती है और भारत का सर्वोच्च न्यायालय रिलायंस फ़ाउण्डेशन को क्लीन–चिट दे देता है!

'मज़दूर बिगुल' के पिछले अंकों में भी हमने बताया था कि कैसे आज न्यायपालिका का फ़ासीवादीकरण हो चुका है। किसी भी पूँजीवादी देश में 'क़ानून सबके लिए बराबर है' या 'न्यायपालिका की निष्पक्षता' का चाहे जितना ढिंढोरा पीटा जाये, लेकिन न्याय के तराज़ू का पलड़ा हमेशा शासक–शोषक वर्ग के पक्ष में झुका रहता है। लेकिन अगर सत्ता पर फ़ासीवादी हुकूमत क़ाबिज़ हो तो न्यायपालिका का असली चेहरा साफ़–साफ़ दिखने लगता है। अडाणी–अम्बानी के पक्ष में दिये गये ये फ़ैसले इस बात को शत–प्रतिशत सही साबित करते हैं।

कुल मिलाकर बात यह है कि न्यायपालिका द्वारा स्वतन्त्र पत्रकारों के ख़िलाफ़ फ़रमान देने और उन पर लगाम कसने की यह कोशिश इस फ़ासीवादी दौर में कोई अप्रत्याशित बात नहीं है। इन स्वतन्त्र पत्रकारों की भी एक सीमा है क्योंकि इनमें से अधिकांश इसी व्यवस्था की चौहद्दी के भीतर ही काम करना चाहते हैं और इसका अतिक्रमण करने के बारे में सोचते तक नहीं है, जिस वजह से ये इस सत्ता के सामने ज़्यादा देर टिक नहीं सकते। असल में तो आज हमें एक ऐसे वैकल्पिक मीडिया के ढाँचे को खड़ा करना होगा जो मज़दूर वर्गीय नज़रिये से देश और दुनिया में हो रही तमाम चीज़ों को दिखाये, जिसका एक क्रान्तिकारी चरित्र हो, जो पूँजीपतियों और धन्नासेठों के टुकड़ों पर नहीं पलता हो बल्कि आम मेहनतकश जनता द्वारा पोषित हो, और जो इस व्यवस्था की असलियत को पूर्ण रूप से खोलकर रख दे। तभी जाकर इन फ़ासिस्टों की रग–रग से लोगों को वाक़िफ़ कराया जा सकता है और असल मायनों में फ़ासीवादी राजनीति का भण्डाफोड़ किया जा सकता है।

योगी-राज में उत्तर प्रदेश में जातिवादी गुण्डों का कहर

रायबरेली में एक दलित व्यक्ति की पीट-पीटकर की गयी हत्या कोई अपवाद नहीं है!

● ज्ञान

उत्तर प्रदेश में जातिवादी गुण्डों की गुण्डई चरम पर है। विगत 1 अक्टूबर की रात रायबरेली में जातिवादी गुण्डो ने एक दलित व्यक्ति की पीट-पीटकर हत्या कर दी। यह घटना उस समय घटित हुई जब हरिओम वाल्मीकि नाम का व्यक्ति अपनी पत्नी और बच्ची से मिलने के लिए अपने ससुराल जा रहा था। रास्ते में रायबरेली के ऊँचाहार थाना क्षेत्र में कुछ लोगों ने उसे पकड़ लिया और उस पर ड्रोन चोर होने का आरोप लगाते हुए पूछताछ करने लगे। हरिओम की आमतौर पर मानसिक स्थिति ठीक नहीं रहती थी, इस वजह से वह उन दबंगों के सवालों के जवाब नहीं दे पाया। ठीक जवाब न मिलने पर उन गुण्डों ने उसे पीटना शुरू कर दिया। सोशल मीडिया पर तैरते हरिओम की पिटाई के वीडियो विचलित कर देने वाले हैं। उसमें दिखता है कि उन जातिवादी भेड़ियों ने पीड़ित के कन्धों पर पैर रखकर उसे बेल्ट और डण्डों से इतना पीटा की हरिओम के कपड़े फट गये और उसका शरीर लहूलुहान हो गया। इस प्रक्रिया में उसके मुँह से राहुल शब्द निकला, जिसके जवाब में उन बदमाशों ने कहा कि "यहां सब बाबा के लोग हैं"। अमानवीय बर्बरता के बाद उन्होंने उसे रेलवे ट्रैक के पास फेंक दिया जहाँ हरिओम की मृत्यु हो गयी।

यह घटना उत्तर-प्रदेश की है, जहाँ पर भाजपा की सरकार है और जहाँ के मुख्यमन्त्री योगी आदित्यनाथ अक्सर दुहराते हैं कि 'उत्तर-प्रदेश उत्तम प्रदेश बन चुका है', 'यहाँ अपराधी थर-थर काँपते हैं' और 'अपराधियों के प्रति ज़ीरो टॉलरेंस की नीति अपनायी जा रही है।' लेकिन इस घटना ने साफ़ ज़ाहिर कर दिया कि अपराधी थर-थर काँप नहीं रहे बल्कि ख़ुद योगी आदित्यनाथ का नाम लेकर हत्याएँ कर रहे हैं और उनकी इतनी हिम्मत इसलिए है क्योंकि उन्हें पता है कि योगी सरकार में जातिवादी, बलात्कारी, फ़ासीवादी गुण्डों को हर तरह का संरक्षण दिया जायेगा। इस बात की सच्चाई हमें चिन्मयानन्द और हाथरस मामले जैसे बलात्कारियों को बचाने में योगी सरकार के पुलिस-तन्त्र के प्रयासों से पता चल जाती है।

आज देश में होने वाली जातिगत उत्पीड़न की घटनाओं में उत्तर-प्रदेश पहले नम्बर पर आता है। इस बात से समझा जा सकता है कि जातिवादी गुण्डों और अपराधियों के मन में कानून का डर बैठा है या संरक्षण पाने का विश्वास! 'राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो' के 2022 के आँकड़ों के अनुसार यूपी में दलितों के ख़िलाफ़ अपराध के 15,368 मामले दर्ज हुए जो देश में कुल दलित-विरोधी अपराधों का 26.7% है। वहीं इन घटनाओं में 2021 की तुलना में 16% की वृद्धि हुई है। शायद जातिगत उत्पीड़न में उत्तर प्रदेश के प्रथम स्थान और वृद्धि को ही देखकर नरेन्द्र मोदी ने कहा था कि 'योगी का कानून व्यवस्था मॉडल देश के लिए उदाहरण है।' इसी मॉडल को राजस्थान और मध्य-प्रदेश की भाजपा सरकारों ने अपना लिया है, तभी तो ये राज्य दलितों के ख़िलाफ़ अपराध के मामले में दूसरे और तीसरे नम्बर पर हैं।

एक तरफ़ जब 'अमृतकाल' और 'विकसित भारत' के फटे ढोल पीटे जा रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ़ भारत में लगातार जातिगत उत्पीड़न की घटनाओं में

चित्र : हिंदी क्विंट से साभार

वृद्धि दर्ज की जा रही है। एनसीआरबी का आँकड़ा बताता है कि 2023 में अनुसूचित जातियों के ख़िलाफ़ अपराध के 57,789 मामले दर्ज हुए, जिसमें 2022 की तुलना में 0.4% की वृद्धि हुई है। 2025 की ही घटनाओं को देखा जाये तो प्रयागराज में बोझा ढोने से मना करने पर एक दलित मज़दूर को जलाकर मार दिया गया। प्रयागराज में ही पुलिस कस्टडी में हीरालाल नामक व्यक्ति की मौत हो गयी। घर वालों ने बताया कि पुलिस ने चोरी के आरोप में हीरालाल की पिटाई की थी जिसकी वजह से उनकी मौत हुई। मध्य प्रदेश के कटनी में दलित युवक के साथ मारपीट और उसके मुँह पर पेशाब करने की घटना सामने आयी। मध्य-प्रदेश के ही दमोह में एक पिछड़ी जाति के युवक को जबरन चरण धोकर पानी पिलाया गया। कुछ दिनों पहले हरियाणा में एक आईपीएस अधिकारी पूरन कुमार ने अपने वरिष्ठ अधिकारियों पर जातिगत उत्पीड़न और भेदभाव का आरोप लगाते हुए आत्महत्या कर ली।

आज एक ओर मोदी और योगी अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बने फिर रहे हैं, एक-दूसरे को शाबाशी देते हुए 'अमृतकाल' के राग अलाप रहे हैं और वहीं दूसरी ओर कहीं मूँछें रखने, कहीं घोड़ी चढ़ने पर, कहीं पानी का मटका छू जाने पर दलितों की पीट-पीटकर कर हत्या की जा रही हैं, जाति देखकर लोगों के ऊपर पेशाब किया जा रहा है, जातिगत गालियाँ देने के साथ ही उनकी हत्याएँ की जा रही हैं। पुलिस कस्टडी में दलितों की मौतें पुलिस प्रशासन के भी जातिवादी रवैया को स्पष्ट कर देती है। आज देश में सत्तासीन फ़ासीवादी मोदी सरकार खुलेआम जातिवादियों के साथ नज़र आती है। दरअसल हिन्दुत्व फ़ासीवादी राजनीति ब्राह्मणवादी विचारधारा और जातिवाद को पोषित करने का काम बख़ूबी अंजाम दे रही है। इसलिए आज हर प्रकार के जातिवादी तत्वों को भाजपा का संरक्षण प्राप्त है और यह अनायास नहीं है कि ऐसे तमाम तत्वों की शरणस्थली ख़ुद भाजपा बनी हुई है। इसलिए आज जातिवाद के ख़िलाफ़ कोई भी कारगर लड़ाई हिन्दुत्व फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ लड़ाई ही हो सकती है।

साथ ही हमें यह भी समझना पड़ेगा कि इस पूँजीवादी व्यवस्था के दायरे के भीतर जातिवाद और जाति-व्यवस्था का अन्त सम्भव नहीं है क्योंकि पूँजीवाद स्वयं किसी न किसी रूप में आम महनतकशों की वर्गीय एकता को तोड़ने के लिए जाति आधारित पहचान की राजनीति को बढ़ावा देता है। इसके अलावा निजी सम्पत्ति पर आधारित पूँजीवादी व्यवस्था का जाति-व्यवस्था से कोई विरोधाभास है भी नहीं। ज़ाहिरा तौर पर आज जिस जाति-व्यवस्था को हम देख रहे हैं वह कोई प्रागधुनिक या सामंती जाति-व्यवस्था नहीं, बल्कि पूँजीवादी जाति-व्यवस्था है। यही कारण है कि इस व्यवस्था के दायरे के भीतर जाति का समूल नाश सम्भव है ही नहीं। यही कारण है कि तमाम चुनावबाज़ पार्टियाँ जो जातिगत पहचान की इस पूँजीवादी राजनीति पर फल-फूल रही हैं, वे इसके ख़िलाफ़ कभी कुछ नहीं करेंगी। जातिवाद और जाति-व्यवस्था का बना रहना उनकी राजनीति के लिए ज़रूरी है। दलितों का रहनुमा बनने का ड्रामा करने वाली बसपा जैसी पार्टी की फ़ासीवादियों के साथ गलबहियों देखकर इसे सहज ही समझा जा सकता है। आज एक वर्ग-आधारित जाति-विरोधी आन्दोलन को संगठित करना बेहद ज़रूरी है। अपनी वर्गीय एकता को क़ायम करके ही हम जातिवाद के ख़िलाफ़ क्रान्तिकारी जुझारू संघर्ष की ओर बढ़ सकते हैं। यह कार्यभार ख़ास तौर पर फ़ासीवाद के दौर में और अधिक अहमियत रखता है। इसलिए इस काम में हमें बिना देरी के आज से ही जुट जाना चाहिए। आज हमारा नारा होना चाहिए – 'बिना जाति-विरोधी संघर्ष के क्रान्ति नहीं हो सकती, बिना क्रान्ति के जाति उन्मूलन नहीं हो सकता!'

अडाणी की लूट उजागर करने पर स्वतन्त्र पत्रकारों को नोटिस

अब देश को बेधड़क लूट रहे धनकुबेरों का नाम लेना भी गुनाह!

● आदित्य

चोर की जान पर बनी हो तो सुई की नोक भी तलवार लगती है! अडाणी के समर्थन में दिये गये कोर्ट के फ़ैसले पर यह कहावत बिल्कुल सही साबित होती है। देश में लगभग सारी मीडिया को अपनी जेब में रखने के बाद भी फ़ासीवादी भाजपा सरकार और उनके आका पूँजीपति जब लोगों से अपनी सच्चाई छिपाने में नाकामयाब साबित हो रहे हैं तो वे बचे-खुचे स्वतन्त्र पत्रकारों को डराकर या पाबन्दी लगाकर सच पर पर्दा डालने की कोशिश में लग गये हैं। इसके लिए उन्होंने लोकतन्त्र के तथाकथित तीसरे खम्भे "न्यायपालिका" का सहारा लिया है और एक फ़रमान जारी किया है कि अडाणी का नाम लेने वाले सैकड़ों वीडियो/पोस्टों को सोशल मीडिया से हटाया जाये। साथ ही उन पत्रकारों को इसके सम्बन्ध में नोटिस भी जारी किया गया है जिसके तहत वे आगे भी ऐसे कंटेंट तैयार नहीं कर सकते जिसमें अडाणी का ज़िक्र हो।

गौरतलब है कि सितम्बर 2025 में अडाणी एण्टरप्राइज़ेज़ द्वारा कई स्वतन्त्र पत्रकारों, मीडिया साइटों और यूट्यूबर/क्रिएटर्स के ख़िलाफ़ एक मानहानि का मुक़दमा दायर किया गया था। इसी मामले में रोहिणी (दिल्ली) कोर्ट की एक सिंगल-बेंच ने (एकतरफ़ा सुनवाई में) अडाणी एण्टरप्राइज़ेज़ के पक्ष में एक अन्तरिम आदेश (ex-parte) पारित किया — जिसमें कई लेख/पोस्ट/वीडियो हटाने और आगे ऐसी सामग्री प्रकाशित/प्रसारित न करने के निर्देश दिये गये। आपको बता दें कि अन्तरिम आदेश (ex-parte) वह आदेश होता है जिसे अदालत केवल एक पक्ष, याचिकाकर्ता की दलीलें सुनकर पारित करती है — दूसरे पक्ष को बुलाये या सुने बिना। ऐसा केवल तभी किया जाता है जब कोई मामला अत्यावश्यक हो तथा जिसके देरी होने से अपूरणीय क्षति हो। मतलब यह कि अडाणी की सच्चाई जनता के सामने न आये, यह देश के लिए एक अत्यावश्यक चीज़ है! इस मामले में बिना दूसरे पक्ष की बात सुने फ़ैसला सुना दिया गया। इन पत्रकारों में रवीश कुमार, अभिसार शर्मा, परंजॉय गुहा, रवि नायर, अबीर दासगुप्ता, अयास्कान्त दास, आयुष जोशी आदि जैसे बड़े नाम समेत कुल 12 नाम शामिल हैं जिनके 221 पोस्ट और वीडियो को हटाने का निर्देश कोर्ट ने दिया है।

ख़ैर, आज तो यह बिल्कुल साफ़ ही है कि लगभग सारी इलेक्ट्रॉनिक और प्रिण्ट मीडिया पर भाजपा या किसी न किसी बड़े धन्नासेठ का ही क़ब्ज़ा है। आधे से ज़्यादा सोशल मीडिया का कंटेंट भी पेड होता है। हमारे देश की मीडिया किस स्तर तक बिक चुकी है, इसका अन्दाज़ा तो इस बात से ही लगाया जा सकता है कि 2024 के विश्व प्रेस स्वतन्त्रता सूचकांक में भारत 180 देशों की सूची में 159वें नम्बर पर था। लेकिन इसके बावजूद कुछ चन्द ऐसे स्वतन्त्र पत्रकार मौजूद हैं जो एक हद तक जनता को सच्चाई से रूबरू कराने का काम कर रहे हैं। लेकिन देश को लूटने वालों, मसलन अम्बानी–अडाणी और समस्त पूँजीपति वर्ग, तथा उनकी ही नुमाइन्दगी करने वालों को ये रास कैसे आ सकता है कि जनता सच जान जाये।

आज जिस स्तर पर भाजपा खुले आम पूँजीपतियों के लिए काम कर रही है, यह किसी से शायद ही छिपा हो। ऐसे में थोड़ी-सी सच्चाई भी जनता को पता चलना सत्ता में बैठे फ़ासीवादियों को गवारा नहीं है। लोग पहले ही महँगाई, बेरोज़गारी, महँगी शिक्षा, महँगी स्वास्थ्य सेवाओं आदि जैसे मुद्दों से परेशान हैं। भाजपा और संघ की लाख कोशिशों के बावजूद हिन्दू–मुस्लिम, मन्दिर–मस्जिद, हिन्दुस्तान–पाकिस्तान जैसे नकली मुद्दे बड़ा रूप अख़्तियार नहीं कर पा रहे हैं। इसके उलट, बिहार में अडाणी को सस्ते दर पर ज़मीन देने, गडकरी के बेटे के एथेनॉल घोटाले से लेकर वोट चोरी का मामला छिपाये नहीं छिप रहा है। ऐसे में रही-सही मीडिया की आज़ादी इनके गले में हड्डी बन रही है।

आज हम जिस फ़ासीवादी दौर में जी रहे हैं, उसमें सिर्फ़ "जनतन्त्र" का खोल मात्र बचा है। इन फ़ासीवादियों ने इस जनतन्त्र की अन्तर्वस्तु को दीमक की तरह अन्दर से पूरा खोखला कर दिया है। कार्यपालिका, विधायिका और मीडिया तो पिछले 10 सालों से नंगे तौर पर यह काम कर रही है, लेकिन बची–कुची कसर अब न्यायपालिका का टेकओवर करके (जो आज अब खुलकर सामने आ गया है, हालाँकि यह काम तो संघ परिवार लम्बे समय से कर रहा था) उन्होंने पूरी कर दी है। वैसे तो आम तौर पर भी पूँजीवाद के अन्तर्गत न्याय व्यवस्था बहुसंख्यक जनता के लिए अन्याय की व्यवस्था ही होती है, लेकिन हमारे देश में आज फ़ासीवादी दौर में अब यह काम जितनी नंगई और बेशर्मी के साथ अंजाम दिया जा रहा है, उसकी मिसाल शायद ही कहीं और हो। इन पूँजीपतियों के लिए अदालतें ऐसे काम कर रही हैं जैसे ये इनके प्राइवेट कोर्ट हों। इनके लिए फ़ास्ट–ट्रैक ऑर्डर आ जाते

(पेज 14 पर जारी)

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

पेट्रोल में इथेनॉल की मिलावट के नाम पर भाजपा ने दिया एक और "राष्ट्रवादी" लूट को अंजाम!

● भारत

हाल के दिनों में 20 प्रतिशत इथेनॉल ब्लेण्डेड पेट्रोल (E20) देशव्यापी स्तर पर चर्चा का विषय बना हुआ है। यानी अब से जो पेट्रोल आप गाड़ियों के लिए इस्तेमाल करेंगे, उसमें 20 प्रतिशत इथेनॉल मिला होगा। बता दें कि 2014 में पेट्रोल में केवल 1.5% इथेनॉल मिलाया जाता था। इथेनॉल एक तरह का बायोफ्यूल है, जो मुख्य रूप से गन्ने की प्रोसेसिंग के दौरान बनता है। इसे पेट्रोल में मिलाकर इस्तेमाल किया जा सकता है, जिससे न सिर्फ़ फॉसिल फ्यूल पर निर्भरता घटती है, बल्कि प्रदूषण भी कम होता है। पर इसका एक साइड-इफ़ेक्ट भी है। 10% से 20% तक की ब्लेण्डिंग पर पुराने इंजन जल्दी घिसने लगते हैं। इथेनॉल में पानी खींचने की प्रवृत्ति ज़्यादा होती है, जिससे ईंधन टैंक और पाइपलाइन में ज़ंग बढ़ सकती है। देश भर से ख़बरें आ रही हैं कि इथेनॉल के इस्तेमाल से गाड़ियों के इंजन ख़राब होने लगे हैं और गाड़ियों की माइलेज भी कम हो गयी है। नीति आयोग के आँकड़ों के मुताबिक भी इथेनॉल के इस्तेमाल से गाड़ियों की माइलेज में 6 प्रतिशत की गिरावट हुई है।

केन्द्र सरकार की बॉयोफ्यूल नीति का नितिन गडकरी ज़ोर-शोर से प्रचार कर रहे हैं। वैसे गडकरी तो सड़क परिवहन और राजमार्ग मन्त्री हैं, पेट्रोलियम विभाग से गडकरी का सीधा कोई सम्बन्ध नहीं है, पर इथेनॉल से उनका गहरा सम्बन्ध है, जिसके बारे में आगे बात करेंगे। इथेनॉल को लेकर गडकरी का कहना है कि पेट्रोल में इथेनॉल मिलाने से आयात बिल घटेगा और गन्ने की अतिरिक्त खपत से किसानों की आय बढ़ेगी। इसी साल जून में गडकरी ने सरकार के आगे प्रस्ताव रखा कि कच्चे इथेनॉल पर जी.एस.टी 18 प्रतिशत से घटाकर 5 प्रतिशत कर दिया जाये। 2018 में भी नितिन गडकरी ने दावा किया था कि इथेनॉल ब्लेण्डिंग से पेट्रोल की क़ीमत 55 रुपये प्रति लीटर और डीज़ल की क़ीमत 50 रुपये प्रति लीटर तक कम हो सकती है। इथेनॉल का इस्तेमाल कर लाखो-करोडों रुपये बचाने के बाद भी, आज-कल पेट्रोल की क़ीमत क्या है, ये तो आप जानते ही होंगे! आप सोचेंगे इसमें क्या अलग बात है, गडकरी सरकार के मन्त्री हैं, तो उसकी योजनाओं का प्रचार करेंगे ही। पर असल में पर्दे के पीछे दूसरा खेल जारी है। इथेनॉल का इस्तेमाल बढ़ाने पर गडकरी का ज़ोर इसलिए है, ताकि उनके बेटों की कम्पनियों को फ़ायदा पहुँच सके। सदाचार का चोला ओढ़कर घूमने वाले नीतिन गडकरी ने इथेनॉल के ज़रिये अपने बेटों को फ़ायदा पहुँचाने के लिए एक "राष्ट्रवादी" लूट को अंजाम दिया है। मोदी सरकार की इथेनॉल ब्लेण्डिंग नीति से सबसे ज़्यादा फ़ायदा गडकरी के बेटो की कम्पनियों को ही हुआ है। इससे भाजपाईयों का दोमुहाँपन फ़िर से उजागर हो गया है। कैसे? आइए जानते हैं!

सन 2016-17 में नितिन गडकरी ने अपनी कम्पनी 'पूर्ति समूह' से दो अलग-अलग कम्पनियाँ बनायी – 'मानस एग्रो' और 'सी.आई.ए.एन एग्रो इण्डस्ट्रीज़'। गडकरी ने इन कम्पनियों को 'पूर्ति समूह' से अलग करके इन दोनों की कमान अपने बेटों सारंग और निखिल गडकरी को सौंप दीं। इन कम्पनियों का प्रमुख उत्पाद इथेनॉल है। 'मानस एग्रो इण्डस्ट्रीज़' कप्तान और होल स्टोन नाम से रम और व्हिस्की का उत्पादन कर रही है। इस कम्पनी का एक शेयर डेढ़ साल पहले मात्र 40 रुपये था, पर अब यह शेयर बढ़कर 668 रुपये का हो गया है। वहीं निखिल गडकरी की कम्पनी 'सी.आई.ए.एन एग्रो' ने 2024 में इथेनॉल सेक्टर में क़दम रखा। इससे पहले यह मसाला और खाने के तेल बेचने वाली कम्पनी थी। 2024 में कम्पनी का टर्नओवर 171 करोड़ था, जोकि 2025 में बढ़कर 1029 करोड़ हो गया। इस कम्पनी के शेयर की क़ीमत जनवरी, 2025 में 41 रुपये थी, जो कि अब बढ़कर 850 रुपये से अधिक हो गयी है यानी इनकी क़ीमतों में 552 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है। सिर्फ़ एक साल में यह कम्पनी इथेनॉल उत्पादन में देश की सबसे बड़ी कम्पनी बन चुकी है। यही है भाजपा के नेता-मन्त्रियों की "राष्ट्रवादी" लूट!

ये सिर्फ़ गडकरी के बेटो की "सफ़लता" की कहानी नहीं है, बल्कि भाजपा के पूरे कुनबे का यही हाल है। अमित शाह के बेटे जय शाह के बारे में तो सब जानते ही हैं कि कैसे वह बी.सी.सी.आई के अध्यक्ष पद से होते हुए आज आई.सी.सी का चैयरमैन बना बैठा है। परिवादवाद का विरोध करने वाली भाजपा, सत्ता में आने के बाद से अपने सगे-सम्बन्धियों को तो फ़ायदा पहुँचाती ही रही है और ख़ासतौर पर अपने बेटे-बेटियों के लिए इन्होनें "अच्छे दिनों" का पूरा इन्तज़ाम कर दिया है।

आइए जानते हैं, भाजपा के कुछ नेताओं के बच्चों के बारे में:

~ शिवराज सिंह चौहान के बेटे कार्तिकेय ने अमेरिका की पेनसिल्वेनिया यूनिवर्सिटी से एल.एल.एम की डिग्री ली है।

~ राजनाथ सिंह के बेटे नीरज सिंह ने ब्रिटेन की लीड्स यूनिवर्सिटी से एम.बी.ए किया है।

~ पीयूष गोयल के बेटे-बेटी हार्वर्ड से पढ़कर इन्वेस्टमेंट बैंकर बन गये हैं।

~ रविशंकर प्रसाद का बेटा आदित्य शंकर न्यूयॉर्क की कॉर्नेल यूनिवर्सिटी से लॉ की पढ़ाई करके वक़ालत कर रहा है।

~ निर्मला सीतारमण की बेटी वांग्मयी ने अमेरिका की नॉर्थवेस्टर्न यूनिवर्सिटी से एम.ए किया है।

~ प्रकाश जावडेकर के बेटे ने बोस्टन यूनिवर्सिटी से पी.एच.डी की है।

~ एस जयशंकर के बेटे ध्रुव ने अमेरिका की जॉर्जटाउन यूनिवर्सिटी से एम.ए किया है और अब वहीं बस गया है। बेटी मेधा ने डेनिसन यूनिवर्सिटी से बी.ए किया है।

~ ज्योतिरादित्य सिंधिया के बेटे महाआर्यमन ने येल यूनिवर्सिटी से डिग्री ली है और अब मध्य प्रदेश क्रिकेट एसोसिएशन का अध्यक्ष है।

~ हर्षवर्धन के बेटे सचिन ने मेलबर्न की यूनिवर्सिटी से फाइनेंस एण्ड अकाउन्टेंसी का कोर्स किया है।

~ जितेन्द्र सिंह के बेटे अरुणोदय ने ऑक्सफोर्ड से डिग्री ली है।

~ हरदीप पुरी की बेटी तिलोत्तमा ने ब्रिटेन की वॉरिक यूनिवर्सिटी से बी.ए करके लन्दन यूनिवर्सिटी कॉलेज से एल.एल.एम किया है और यू.एस में बस गयी है।

~ गजेन्द्र सिंह शेखावत की बेटी सुहासिनी ने ऑक्सफोर्ड से डिप्लोमा किया है।

ये चन्द भाजपा नेताओं और उनके बच्चों के नाम हैं। वैसे ये सूची बहुत लम्बी है। आपने अक्सर भाजपा-संघ के नेताओं को कहते सुना होगा कि हिन्दू ख़तरे में है, इसलिए धर्म की रक्षा के लिए हर हिन्दू को आगे आना चाहिए। सभी त्यौहारों में साम्प्रदायिक उन्माद फैलाने के लिए भाजपा-संघ के लोग नौजवानों को हाथों में तलवार पकड़ाते हैं और इसे धर्म की रक्षा करना बताते हैं। जब कहीं दंगे कराने होते हैं, आम घरों के नौजवानों को आगे कर दिया जाता है। पर क्या आपने कभी सोचा है कि भाजपा-संघ के लोग अपने बच्चों को इन उन्मादी रैलियों में शामिल क्यों नहीं करते, उनके हाथों में तलवार क्यों नहीं थमाते? धर्म की रक्षा के लिए अपने बच्चों को आगे खड़ा क्यों नहीं करते? वैसे तो भाजपा-संघ के नेता स्वदेशी की बात करते हैं लेकिन अपने बच्चों को विदेशों में पढ़ाते हैं! एक तरफ़ देश के युवा बेरोज़गारी की मार झेल रहे हैं, आये-दिन पेपर लीक की घटनाएँ हो रही हैं, पर दूसरी तरफ़ भाजपाईयों के बेटे-बेटियाँ विदेशों में ऐशो-आराम की ज़िन्दगी जी रहे हैं। अब से कहीं भी आपकों भाजपा-संघ के लोग मिलें, तो इनको ऊपर दी गयी सूची दिखाइये और पूछिये कि अपने बेटे-बेटियों को भी धर्म की रक्षा के लिए लेकर क्यों नहीं आते हैं? इससे इन संघी फ़ासिस्टों का "सादगी-सदाचार-सभ्यता" का नक़ाब उतर जाता है और इनका चाल-चरित्र-चेहरा सामने आ जाता है, जिससे इनकी नीचता-नंगई खुलकर दिख जाती है।

बहरहाल अब तक आप समझ चुके होंगे कि किस प्रकार भाजपा इथेनॉल के ज़रिये एक नयी "राष्ट्रवादी" लूट को अंजाम दे रही है। दरअसल "अच्छे दिन" और "देश के विकास" के जो हवाई गोले भाजपा ने 2014 में छोड़े थे वे इनके अपनों के लिए ही थे, जिसमें भाजपा नेता, उनके परिवार और पूँजीपतियों की जमात शामिल हैं।

राजेन्द्र धोड़पकर के दो प्रासंगिक कार्टून

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016